राजर्षि



शून्य से बोल उठे सप्तर्षि,
धन्य ब्रह्मर्षि, धन्य राजर्षि।

रचयिता—

सरयूप्रसाद पाण्डेय

प्रकाशक



प्रकाशक
ए० मुकर्जी,
नेशनल लिटरेचर कं०
१०५, काटन स्ट्रीट,
कलकत्ता ।

प्रथमवार
१९४१
मूल्य ।।।)
सजिल्द १)

मुद्रक—
[illegible] गुप्त,
गुप्ता प्रेस,
७।१, बाबूलाल लेन
कलकत्ता

राजर्षि



श्रीयुत सेठ मोतीलालजी लाठ

समर्पण

स्वदेश-भक्त, उन्नतमना, साहित्य प्रेमी एवम् सुधारक

मारवाड़ी स्टोर्स लिमिटेड, कलकत्ता

के

मैनेजिङ्ग डायरेक्टर

माननीय

श्रीयुत सेठ मोतीलालजी लाठ

की

सेवामें

महोदय,

इसमें विलस रहा है मेरे
भावो का संसार,
इसमे निहित विश्व के भी हैं
विशद विमर्ष – विचार।
अतः आपको समुद समर्पित
है 'राजर्षि' उदार,
आशा है इस पत्र–पुष्प को
कर लेंगे स्वीकार।

भवदीय :—

सरयूप्रसाद पाण्डेय।

'राजर्षि' पर दो प्रमुख सम्मतियां

'सुकवि' निर्माता एवम् काव्य-मर्मज्ञ

पं० गयाप्रसादजी शुक्ल 'सनेही' की सम्मति

पाण्डेयजीका यह खण्ड-काव्य महर्षि बाल्मीकि और विशेषत: कवि-कुल-कुमुद-कलाधर कालिदासके रघुवंश महाकाव्य पर आधारित है। पाण्डेयजी को हिन्दी वृत्तों पर असाधारण अधिकार जान पड़ता है। आपकी वर्णन-शैली सुस्पष्ट, भाषा परिमार्जित और सजीव है। मात्रिक छन्दोंके साथ ही जहा वर्णिक वृत्तोका प्रयोग आपने किया है, वहां भी आप रचना में सफल दिखाई देते हैं। महाराज दिलीपके गोचारणसे अजके स्वयम्वर तक सारी कथा बहुत मनोरंजक ढंगसे वर्णित है। प्रत्येक दृश्य सजीव होकर आंखोके सम्मुख आता है। स्थान-स्थान पर उपयुक्त रसोंका संचार हृदयको प्लावित कर देता है। अजके स्वयम्वरके आगेकी कथा आपने "रामायण शतकोटि अपारा" प्रस्तुत जानकर छोड़ दी है। साराश यह कि इस काव्यके प्रणयनमें आपको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है, इसके लिये आपको हृदयसे बधाई देता हूँ।

विनीत—

"सनेही"

वर्तमान भूषण, सिद्धार्थकार, महाकवि पं० अनूप शर्मा M.A.L.T. की सम्मति

श्रीयुत सरयूप्रसादजी पाण्डेय कृत राजर्षि नामक काव्य-ग्रन्थको उन्हीं के मुखसे सुना। आपने रघुवंशके आधार पर रघुवंशके कतिपय राजर्षियों का बहुत ही सरस और सालंकार वर्णन किया है। आपने प्राचीन संस्कृत-पद्धतिका यथोचित सम्मान किया है, साथ ही नवीनताका भी अच्छा समादर किया है। आपका यह काव्य-ग्रन्थ हिन्दी-संसारमें सम्मानका भागी होगा, इसमें मुझको किञ्चिन्नमात्र भी सन्देह नहीं है। आपकी रचना सर्वत्र प्रौढ़ और परिष्कृत है।

यद्यपि आपने इस फासिस्ट और वोल्शाविक युगमें भी नृप-प्रतिष्ठाके मार्गका अनुसरण किया है, परन्तु तो भी आपकी अभिरुचि सर्वथा प्रशंसनीय है; क्योंकि जिन चरित्रोंका चित्रण आपने अपने काव्य-ग्रन्थमें किया है, वह उदात्त और अनुकरणीय अवश्य थे। आपने सरस-सालंकार काव्य-शैली द्वारा हमारी पूर्व संस्कृतिके रक्षार्थ जो कार्य किया है, उसके लिये हिन्दी-संसार आपका आभारी रहेगा। मैंने आपकी कविता पसन्द की और आपकी सफलता चाहता हूँ।

अनूप शर्मा

भूमिका

'राजर्षि' एक खण्डकाव्य है और 'राजर्षि' का कथानक लिया गया है, कालिदास के रघुवंश से। पण्डित सरयूप्रसादजी पाण्डेय से मैंने जब पूछा कि उन्होने रघुवंशका अनुवाद क्यों नहीं किया, केवल कथानक ही क्यों लिया; तो उन्होने उत्तर दिया,"कविताका अनुवाद असंभव है किसी कवि की कविताका अनुवाद करना, उस कवि के साथ अन्याय करना हैं, क्योंकि हम जिस चीज का अनुवाद कर सकते हैं, वह है भाषा—कलाका शरीर मात्र, भाव अथवा आत्मा को हम अनुवाद द्वारा नहीं ला सकते हैं।"

पाण्डेयजी ने जो कुछ कहा वह एक बहुत बड़ा सत्य है। किसी भी महान कलाकार की कृति का अनुवाद करके हम उस कलाकारको विकृत रूपमें ही पेश कर सकते हैं, और विशेषतः कविताका कवितामें अनुवाद तो अनधिकार चेष्टा है।

पण्डित सरयूप्रसादजी पाण्डेयने इस पुस्तकके साथ हिन्दी-संसारमें कविके रूपमें पदार्पण किया है। इस पुस्तकको पढ़नेके पहिले मैंने उनके अन्दरवाले कलाकारको नहीं देखा था—और जब मैंने यह पुस्तक पढ़ी तब मैंने देखा कि हिन्दीमें ऐसे श्रेष्ठ कलाकार अभी मौजूद हैं, जिन्हें परिस्थितियो ने दवे रहनेके लिये विवश कर दिया है।

आज खण्डकाव्य और महाकाव्यका युग नहीं हैं, आजकी कविता गीतों की कविता है। इसका बहुत बड़ा कारण है। कथाके कहनेके रूप

निर्धारित हो चुके हैं। आज गद्य पूर्ण रूपसे विकसित है। और इसलिये आज कलाकार किसी भी कथाको उपन्यासके रूपमें अथवा कहानी (साहित्यिक) के रूपमें कहेगा, उसमें उसे सुविधा है।

खण्डकाव्यों तथा महाकाव्योंमें वर्णनात्मक स्थानोंमें प्रायः शिथिलता आ जाया करती हैं, और इसलिये काव्य-परिपाटीमें महाकवि वही समझा जाता था जो सफलता पूर्वक महाकाव्य लिख सके। कथानक कहनेके समय काव्यको बनाये रखना—रसका पूर्ण रूपसे समावेश करना, सरल काम नहीं है। और इसलिये यह कहा जा सकता है, कि जो व्यक्ति सफलता पूर्वक खण्डकाव्य या महाकाव्य लिख सकता है, वह वास्तव में उच्चकोटिका कवि है।

पाण्डेयजी ने 'राजर्षि' में अपनी प्रतिभाका सुन्दर परिचय दिया है, और मै आशा करता हूँ कि इस युगमें हिन्दी के जितने खण्डकाव्य या महाकाव्य निकले हैं, उनमें इस पुस्तकको ऊँचा स्थान मिल सकेगा।

'राजर्षि' हिन्दी–साहित्यमें एक अभावको पूरा करेगा। उच्चकोटि की कविता 'राजर्षि' में मिलेगी, और मिलेगा कालिदास के 'रघुवंश' के ६ सर्गों का कथानक।

इस पुस्तकमें एक नवीन दृष्टिकोण है। काव्य-परिपाटी युगकी आत्माको प्रतिबिंबित करती है। आजके आदर्शोंका पुस्तक में समावेश किया गया है।

विधवा एवं विधुर राज्य भरमें न कहीं थे,
अविवाहित भी युवति तथा नवयुवक नहीं थे।

छुआछूतके भूत न थे सिर पर मंडराते,
एक दूसरेसे न कभी थे घृणा दिखाते।
कृषक, नागरिक, श्रमिक सौख्य सम थे सब पाते,
मजदूरों को पूंजीपति थे नहीं सताते।
वेद विहित थी मंजु श्रेष्ठतर वर्ण-व्यवस्था,
एकसूत्रता नहीं अपितु संगठित अवस्था।

उच्चकोटिकी वर्णनात्मक कविता आज हिन्दी में नहींके बराबर है। पाण्डेयजी ने इस पुस्तकके चौथे सर्गमें वसन्तका जो वर्णन किया है, वह काव्य से परिपूर्ण है।

शिशिरान्त हुआ अब, प्रिय कुसुमाकर आया,
कोकिल-कुल ने पंचम में गाना गाया।
सर-मध्य अमल इन्दीवर मंजुल फूले,
अलि दल मंडराते उनपर भूले भूले।
रजनीगंधा की गंध कहीं रह-रह कर,
हो रही व्याप्त है तिर्यगूर्ध्व मह-मह कर।
झुक-झूम लिपटती हैं तरु से लतिकाएँ,
दौड़ीं सागरसे मिलने को सरिताएँ॥

पवित्र शृंगारको कविने नवें सर्ग में जो चित्रित किया है, उसके लिये वे बधाईके पात्र हैं। स्वयम्वरा के नख-शिखका वर्णन करते हुए कविने कई बड़े सुन्दर छंद लिखे हैं।

स्वरापगा-सी कमनीय कांति थी,
गिरा समा-थी विदुषी मनोरमा।

कोटि-कोटि खर तर कृपाण से,
रक्षित तू प्रिय अधिक प्राणसे।
कोटि २ कल कंठ गान से,
स्वाभिमान से और मान से।
हो मुखरित महिमण्डल सारा ॥जनपद प्यारा०॥

इस पुस्तकका हिन्दी संसार स्वागत करेगा, और पाण्डेयजी कविता के क्षेत्रमें अपना उचित स्थान ले सकेंगे। मैं उनका आदरके साथ स्वागत करता हूँ और उनसे इस बातका अनुरोध करूंगा कि वे सम्पूर्ण रघुवंश के कथानकको पद्य-बद्ध करके हिन्दी साहित्यके भंडारको बढ़ावें।

भगवतीचरण वर्मा

दो शब्द

कवि-कुल-तिलक कालिदास प्रणीत रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भिक ६ सर्गों के कथानक को लेकर 'राजर्षि' की रचना हुई है। रघुवंश राशि-राशि समुज्वल रत्नोका भाण्डार है—वह रत्नाकर है। ऐसे मोहक एवं आकर्षक रत्नों का लोभ भला मैं कैसे सम्वरण कर सकता? अतएव उस रत्नाकर में गोता लगाया, और सामर्थ्य केअनुसार मातृ-भाषा की श्रीवृद्धि के लिये अनेक देदीप्यमान रत्नों को निकाल कर अपनी इस छोटी-सी पुस्तिका को सजाया है। एतदर्थ उस महाकवि का मैं चिर ऋणी हूँ, इसमें सन्देह नहीं।

'राजर्षि' का निर्माण मै जैसा करना चाहता था, समयाभाव के कारण वैसा न कर सका। प्रकाशन सम्बन्धी असुविधा भी एक कारण है। सम्वत् १६६६ की रामनवमी के दिन राजर्षि की रचना समाप्त हो चुकी थी, किन्तु उसके प्रकाशन का अवसर आज प्राप्त हुआ है।

एक प्रकार से यह मेरा प्रथम प्रयास है। मै कहां तक सफल हुआ इस सम्बन्ध में कुछ कहना मेरे लिये अनधिकार चेष्टा होगी। इसका निर्णय तो सहृदय समालोचक एवं विज्ञ पाठक ही करेंगे।

माननीय श्रीयुत बाबू भगवतीचरणजी वर्मा को धन्यवाद है, जिन्होंने भूमिका लिख कर पुस्तक की उपादेयता को और साथ ही मेरे उत्साह को बढ़ाया है। श्रद्धेय पं० विष्णुदत्त जी शुक्ल को अनेक साधुवाद

भी सन्तोष नहीं होता, कारण राजर्षि को इस रूप में आप लोगों के सम्मुख रखने में मैं जो समर्थ हुआ, यह आप के ही प्रोत्साहन का फल है। मित्रवर पं० रमाकान्तजी त्रिपाठी 'प्रकाश' को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने समय-समय पर अपने सत्परामर्श से मुझे लाभान्वित किया है। अन्ततः उन प्राचीन एवम् आधुनिक सत्कवियो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य सतझता हूँ, जिनके सद्ग्रन्थों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे मुझे सहायता मिली है।

कलकत्ता
नाग पञ्चमी १६६८ } सरयूप्रसाद पाण्डेय

* श्रीगणेशाय नमः •

राजर्षि



पहला सर्ग—अतीत-गौरव



अयि मा, वीणापाणि, कृपा कर विश्व-विहारिणि,
आ रसना पर बैठ दयामयि, भव-भय-हारिणि।
हृत्तंत्री के तार ज़रा तू झंकृत कर दे,
निकले मधुमय राग भाव नूतनतर भर दे।

काव्यामृत बह चले मग्न उसमें संसृति हो,
मंगलमय 'राजर्षि' हमारा अथ से इति हो।
अजरामर प्रत्येक वर्ण हो बोध गम्य हो,
भाव रुचिर हो जननि, सुखद हो, और रम्य हो।

× × ×

राजर्षि

विधि-सुत मनु भगवान प्रथम नृप हुये धरा पर,
और मानवी-सृष्टि हुयी जिनसे यह सुन्दर।
बना मनुस्मृति मनुज मात्रको सभ्य बनाया,
धर्म नीति, नयनीति आदि का मर्म बताया।

सरयू तट पर रम्य अयोध्या नगरी पावनि,
स्वर्गोपम आदर्श रूप थी जन-मन-भावनि।
दीर्घ काल तक राज्य उन्होने किया धरापर,
मनुजो को मनुजत्व उन्होंने दिया धरापर।

निर्वाचित कर उसे राजधानी भूपतिवर,
राजदण्ड ले हुये प्रजापालन में तत्पर।
हुये इसी कुल मे दिलीप अवनीपति ज्ञानी,
यज्ञ-दक्षिणा-सी सुदक्षिणा थी नृपरानी।

बल, विक्रम में राजनीति मे यथा पुरन्दर,—
थे वे अनुपम रत्न सत्यसागर नयनागर।
कोमल थे नवनीत तुल्य वे विज्ञ महीपति,
वज्रादपि फिर भी कठोर थे मित्र, महामति।

अतीत-गौरव

वेद, शास्त्र-निष्णात युद्ध–विद्या के ज्ञाता,
धनुर्वेद के धन्य आप थे स्वयं विधाता।
भृत्यों को निज मित्र तुल्य थे आर्य मानते,
मित्रों को निज बन्धु, बन्धु को 'आप' जानते।

निर्भय थे, लोकापवाद से केवल डरते,
वेदाज्ञा अनुकूल राज्य–संचालन करते।
था संगठित मंत्रि–मंडल उनका अति उत्तम,
कवि कोविद से सदा प्रशंसित थे नृप सत्तम।

इस ससागरा वसुंधरा पर कीर्ति पताका,—
उड़ी, चतुर्दिक बंधा भूपका उज्वल शाका।
धर्म, अर्थ, कामादि सुलभ हो गये सभी को,
शुचि, दिलीप-राजत्व-कालमे इस जगती को।

मिला शान्ति–सुख हुआ विश्व मे स्वर्ण सवेरा,
कमलाने मानो घर घर मे किया बसेरा।
अनावृष्टि–अति वृष्टिआदि का भय न कही था,
जलद समय पर जल देते, दुख शोक नहीं था।

यज्ञों से इन्द्रादि देव को वश में रखते,
अमृतोपम फल इसीलिये वे मुख से चखते।
वे विवाद में वाणी पर संयम रखते थे,
नहीं वितण्डावाद भूल कर भी करते थे।

त्यो विचार कर कार्य किया करते थे सुन्दर,
अंध भक्त थे नहीं किसीके भी नारी नर।
वन–विहार, मृगयादि साथ ही वे करते थे,
जल–क्रीड़ा यज्ञादि साथ ही वे करते थे।

विधवा एवं विधुर राज्य भर में न कहीं थे,
अविवाहित भी युवति तथा नव युवक नहीं थे।
छुआछूत के भूत न थे शिर पर मँड़राते,
एक दूसरे से न कभी थे घृणा दिखाते।

थे गुरुकुल आदर्श बालगण शिक्षा पाते,
वेद और वेदाङ्ग उन्हें आचार्य पढ़ाते।
त्यों खगोल, भूगोल और इतिहास बताते,
परा और अपरा विद्या को थे सिखलाते।

सैनिक शिक्षा युवकोंको नृप थे दिलवाते,
योग्य नागरिक और आर्य थे उन्हे बनाते।
कन्यायें कन्या-गुरुकुल में शिक्षा पातीं,
आचार्या सस्नेह उन्हें थीं कुशल बनातीं।

ज्योतिष, छंद, निरुक्ति आदि सप्रेम पढ़ातीं,
सह कृदन्त व्याकरण और साहित्य सिखातीं।
स्वर समेत संगीत बालिकायें अति सुन्दर,
करती थीं अध्ययन वाद्य-यंत्रो का रुचिकर।

शारीरिक दौर्बल्य न कुछ उनमें रह जाये,
प्रकट मही पर मातृ शक्ति निज छवि दिखलाये।
इसीलिये व्यायाम बालिकोचित थे प्रचलित,
करती थीं अभ्यास समुद कन्याये नियमित।

वीराङ्गना मनोज्ञ अतः वे सब थीं होतीं,
धर्म-ज्ञान-विज्ञान-बीज शिशु में थीं बोती।
गृह कार्यों में कुशल सभी थी सदाचारिणी,
ब्रह्मवादिनी, वीर-प्रसू थीं ब्रह्मचारिणी।

शिशु पालन में दक्ष स्नेह मयि थीं ललनाये,
वैदिक धर्म ललाम जानती थीं बालायें।
इसीलिये वे सभी देवियाँ थीं कहलातीं,
उच्चासन अतएव विश्व में थीं सब पातीं।

कृषक, नागरिक, श्रमिक सौख्य सम थे सब पाते,
मजदूरों को पूंजीपति थे नहीं सताते।
वेद-विहित थी मंजु श्रेष्ठतर वर्ण-व्यवस्था,
एकसूत्रता नहीं अपितु संगठित अवस्था।

कहने का तात्पर्य यथा मघवा को पाकर,
अमरपुरी में अमर अवस्था होती सुखकर।
कोक, कोकनद यथा अंशुमाली को पाकर,
मुदित और विकसित हो जाते हैं प्रतिवासर।

त्यों दिलीप को पाकर के साकेत निवासी,—
विकसित हुयी सहर्ष प्रजा कमनीय कला-सी।
शिष्ट प्रजाका शिष्ट आचरण देख महीपति,
प्रमुदित होते थे विशेष रूपेण महामति।

सउत्साह प्रिय प्रजा हेतु थे सब कुछ करते।
गो-ब्राह्मण-हित जागरूक निशि वासर रहते।
सबविध वे थे सुखी किन्तु आंखो का तारा,
कुल-दीपक, उत्तराधिकारी अबतक प्यारा—

प्राप्त नहीं कर सके इसी से निशदिन चिन्तित—
रहते थे फिर भी रखते थे चित्त व्यवस्थित।
सौंप राज्य का भार मंत्रि-मण्डल को सारा,
सह सुदक्षिणा लिये मनोरथ मंजुल प्यारा।

रथारूढ़ हो चले वशिष्ठाश्रम को सत्वर,
मंजु कामना-सिद्धि हेतु बलशाली नृपवर।
देवराज सह शची देवगुरु ढिग हो जाते,
त्यो नरेन्द्र सह साम्राज्ञी थे शोभा पाते।

जब सीमा साकेत पार कर के रथ आगे—
चला मनोरम दृश्य देख दम्पति अनुरागे।
सर, सरिता, बन, बाग कहीं पर मृदुल लतायें,—
लटक रही हैं, कहीं खेलती मुनि कन्यायें।

देखीं; सस्मितवदन प्रिया से ऐसे बोले,
"कल्याणी, ये मृग-शावक हैं कैसे भोले।
कनक-छड़ी सी नागवेलि ये खड़ी सयानी,
देखो कुञ्जर वहा पी रहा सुख से पानी।

"बकुल-वृक्ष के तले नकुल वह घूम रहा है,
तरु शाखा को घर शाखामृग झूम रहा है।
मल्ल-युद्ध-रत बनमानुष हैं देखो कैसे,
प्रिये, मत्त गज आपस में लड़ते हों जैसे।

"घोषवृन्द नवनीत लिये कुछ गुन गुन गाते,
देने को उपहार प्रेम पूर्वक हैं आते।
ओस-विन्दु-मय कमल कोष हैं कितने सुन्दर,
लुब्ध हो रहे हैं कैसे ये प्रेमी मधुकर।

" सुभगे, सरिता मध्य तिमिङ्गिल नाच रही हैं,
द्विज-कन्यका समोद उपनिषद् वाच रही हैं।
छोटे छोटे भवन पर्ण शाला अति उत्तम,
कहीं कहीं पर यज्ञ-यूप हैं बड़े मनोरम।

"दधि-मंथन कर रही चाव से गोप-वधूटी,
वह देखो है पड़ी शिंशपा—शाखा टूटी।
घर्घर रव सुन कर चक्रो का अयि पिक-वैनी,
घनरव का भ्रम हुआ मयूरों को मृगनैनी।"

वन्य और ग्रामीण सुखद सुषमा दिखलाते,
और मार्ग के दृश्य प्रिया सह लख सुख पाते।
संध्या समय नरेश निकट आश्रम के आये,
तपोभूमि को देख शांति सुख अतिशय पाये।

गुरु-गौरव, स्वछन्द वहा पर खेल रहा था,
मूर्तिमान तप और जहा पर खेल रहा था।
मृगछौने भय-रहित हरित तृण दल थे खाते,
नृप ने देखा बटुक लिये समिधा थे आते।

स्यंदन से द्रुत उतर दक्षिणा को उतार कर,
समुपस्थित हो गये जहा थे संस्थित गुरुवर।
कर प्रदक्षिणा सह सुदक्षिणा नृप ने सत्वर,
निज मस्तक रख दिया प्रेम से ऋषि-चरणों पर।

देखीं; सस्मितवदन प्रिया से ऐसे बोले,
"कल्याणी, ये मृग-शावक हैं कैसे भोले।
कनक-छड़ी सी नागवेलि ये खड़ी सयानी,
देखो कुञ्जर वहा पी रहा सुख से पानी।

"बकुल-वृक्ष के तले नकुल वह घूम रहा है,
तरु शाखा को धर शाखामृग भूम रहा है।
मल्ल-युद्ध-रत बनमानुष हैं देखो कैसे,
प्रिये, मत्त गज आपस में लड़ते हो जैसे।

"घोपवृन्द नवनीत लिये कुछ गुन गुन गाते,
देने को उपहार प्रेम पूर्वक हैं आते।
ओस-विन्दु-मय कमल कोष हैं कितने सुन्दर,
लुब्ध हो रहे हैं कैसे ये प्रेमी मधुकर।

" सुभगे, सरिता मध्य तिमिङ्गिल नाच रही हैं,
द्विज-कन्यका समोद उपनिषद् बाच रही है।
छोटे छोटे भवन पर्ण शाला अति उत्तम,
कहीं कहीं पर यज्ञ-यूप हैं बड़े मनोरम।

"दधि–मंथन कर रही चाव से गोप-वधूटी,
वह देखो है पड़ी शिंशपा—शाखा टूटी।
घर्घर रव सुन कर चक्रो का अयि पिक-वैनी,
घनरव का भ्रम हुआ मयूरों को मृगनैनी।"

वन्य और ग्रामीण सुखद सुषमा दिखलाते,
और मार्ग के दृश्य प्रिया सह लख सुख पाते।
संध्या समय नरेश निकट आश्रम के आये,
तपोभूमि को देख शांति सुख अतिशय पाये।

गुरु-गौरव, स्वच्छन्द वहां पर खेल रहा था,
मूर्तिमान तप और जहा पर खेल रहा था।
मृगछौने भय–रहित हरित तृण दल थे खाते,
नृप ने देखा बटुक लिये समिधा थे आते।

स्यंदन से द्रुत उतर दक्षिणा को उतार कर,
समुपस्थित हो गये जहा थे संस्थित गुरुवर।
कर प्रदक्षिणा सह सुदक्षिणा नृप ने सत्वर,
निज मस्तक रख दिया प्रेम से ऋषि-चरणो पर।

तपोनिष्ठ गुरुवर वशिष्ठ ने उन्हें उठाया,
वड़े प्रेम से वड़े चाव से हृदय लगाया।
बोले, "शुभ आगमन किस लिये आर्य, हुआ है,
लोकाधिप, मम योग्य कहो क्या कार्य हुआ है।"

"गुरो, कष्ट ही सदा आपको हैं हम देते,
किन्तु आप भी देव, नित्य सुध सम्यक् लेते।
हैं सब सुखी समग्र प्रजा सुरराज-प्रजा सी,
पुरजन, परिजन, श्रमिक, कृषक साकेत-निवासी।

"मैं ही केवल गुरो, दुखी हूँ और दीन हूं,
पुत्र-सौख्य से रहित पुष्प मैं गंध हीन हूँ।
ताल-कमल से हीन प्रभाकर तेज रहित हो,
प्रभा हीन हो चन्द्र, यामिनी शशि विरहित हो।

"त्यों है मेरी दशा, दुःख है इससे भारी,
कृपा कीजिये, कृपा कोर का खड़ा भिखारी।
प्रभो विमल रवि-वंश डूब ही क्या जायेगा,
मंगल मय वह सुदिन सुअवसर कब आयेगा?

"देख पुत्र-मुख हृदय-कली जब खिल जायेगी,
अन्तरात्मा गुरो, शाति कब तक पायेगी!"
सुन कर ऐसी बात हुए ऋषिवर कुछ चिन्तित,
ज्ञान लिया सब वृत्त हुए जब ध्यानावस्थित।

बोले यो ऋषिराज, "सुनो नरराज, ध्यान धर,
इन्द्र–सभा से एक बार थे आते नृपवर—
आर्या सहित समोद कल्प-तरु तले मनोज्ञा,
पूजनीय वह कामधेनु बैठी थी योग्या।

"अभिवादन तक नहीं किया कारण वश तुमने,
शुभाशीष भी नहीं लिया कारण वश तुमने।
इससे उसने कहा, 'निरादर किया आपने,
आदरणीया का न समादर किया आपने।

"मम संतति के किये बिना सेवा हे नरपति,
देख पुत्र-मुख तुम न सकोगे हे मंजुलमति।'
सुन न सके वह गिरा देव–सरिमें बहु कुंजर,
थे क्रीड़ा कर रहे गरजते भी थे गुरुतर।

सजा ऊषा सुवर्णमय थाल,
किये अनुरञ्जित अपना भाल।
जगत को करती हुई निहाल,
पीतवसना आयी तत्काल।

वेद–मंत्रों का सस्वर नाद,
स्नातको का श्रुति मधुर विवाद।
छिड़ा खग कुल का मधुमय राग,
हो गया मुखरित आश्रम-भाग।

किया रवि ने निज किरण प्रसार,
और वह करने लगी विहार।
दिवाकर का पा मृदुल दुलार,
स्वार्थ से रहित अनोखा प्यार।

कमल दल विकसित हुए ललाम,
हुये सर द्विगुणित, शोभा-धाम।
कुमुदिनी मुरझाई चुप-चाप,
मिला उसको उलटा संताप।

गोचारण

जगत का है अद्‌भुत व्यापार,
किसी को घृणा किसी को प्यार।
मिला दिनकर से वाचक वृन्द,
इधर ये देखो मत्त मिलिन्द।

मधुर मधुपान निरत स्वच्छंद,
हो रहे हैं कैसे सानन्द।
स्वार्थमय हैं इनका व्यापार,
वणिक–सा है इनका संसार।

तितलियाँ उड़ने लगीं समोद,
परस्पर करती हुईं विनोद।
मंद गति से प्रिय सुखद समीर,
आ गया कलिकाओं के तीर।

लगा करने वह हास-विलास,
और उनसे सुखमय—परिहास।
सुमन से, मन से लेकर गंध,
न था उसको कोई प्रतिबन्ध।

कर दिया वितरित चारो ओर,
किया जग को आनन्द विभोर।
इसीसे देवदूत शुभ नाम,
प्रशंसित हैं उसके सब काम।

कहा ऋषि ने, "यह स्वर्ण प्रभात,
यहीं भारत में होता तात।
और देशों में यों सौंदर्य,
न प्रकटित होता है नृपवर्य।

"कहाँ यह स्वर्णिम, शुभ्र प्रकाश,
दीखते रवि न कहीं षटमास।
नयन के होते विफल प्रयास,
प्राप्त करते न कभी उल्लास।

उगलता कहीं दिवाकर आग,
तवा-सा जलता है भू-भाग।
विकल रहते हैं प्राणी मात्र,
यांचते जल ही जल प्रति पात्र।

गोचारण

देश कितने हैं शीत प्रधान,
दुर्दशा का उनकी अनुमान।
सहज ही कर सकते हैं तात,
श्वेत हिम-तुल्य देखकर गात।

दक्षिणा तत्क्षण कर शतवार,
नंदिनी का षोड़श उपचार।
तपोवन तक सुरभी के साथ,
गईं, आगे लेकर नर नाथ—

चले करमे लेकर कोदण्ड,
जन्तु बीहड़ वन के उद्दण्ड—
देख उनको निज क्रूर स्वभाव—
त्याग कर अपना हिंसक भाव—

हो गये हैं अति सरल नितान्त,
पालतू पशु से बिल्कुल शांत।
मृगाधिप और गयंद कुरंग,
विचरने लगे एक ही संग।

देख नृप को आते मतिमान,
खगों ने गाये मङ्गल गान।
लताओं ने तन दिये वितान,
प्रकृति ने बरसा पुष्प निदान—

प्रदर्शित की अनुपम निज भक्ति,
देखकर कौशलेन्द्र की शक्ति।
किया घन ने पथ-रज को शांत,
खिल उठी गोचर-भूमि प्रशांत।

नंदिनी आगे सुषमा—धाम,
नराधिप हैं पीछे गुण—ग्राम।
पा रहे शोभा उभय अतीव,
यथा माया के पीछे जीव।

भलीविध करते रक्षण कार्य,
चले जा रहे मुदित मन आर्य।
बैठती जब वह सुरभि पुनीत,
बैठते तब वह लोभातीत।

गोचारण

खड़ी होती जब धेनु मनोज्ञ,
खड़े होते तब नरपति योग्य।
नंदिनी करती जब जलपान,
ग्रहण करते तब जल धीमान।

मृदुल तृण दूर्वादल के संग,
खिलाते कभी नृमणि सउमंग।
मक्षिका आती लख नरदेव,
उड़ा देते सहर्ष स्वयमेव।

कभी सहलाते उसका गात,
कभी करते उसको प्रणिपात।
दक्षिणा के ध्रुव जीवन-मूल,
चयन कर विविध रंगके फूल।

बनाते माला कभी अनूप,
नंदिनी को पहनाते भूप।
इस तरह हुआ दिवस अवसान,
लगे करने दिन-मणि प्रस्थान।

खमंडल लोहित वर्ण निदान,
पूर्ववत हुआ विपुल छविवान।
पादपों की चोटी पर नृत्य—
लगी करने किरणें-आदित्य।

लालिमा तरु-हरीतिमा संग,—
मिली जब हुआ अनोखा रंग।
पुनः पर्वत शिखरों पर लोल,
रश्मियाँ करने लगीं किलोल।

हुये सरसिज सर में संत्रस्त,
हुई रविमणि भी चिन्ता ग्रस्त।
विश्व में वह अदृष्ट का चक्र,
घूमता रहता है सर्वत्र।

उसे कब क्या होता है इष्ट,
वही सकता है जान अदृष्ट।
कमल पायेगा अब अपकर्ष,
कुमुदिनी का होगा उत्कर्ष।

विहंगिनि—विहग मचाते शोर,
चले आ रहे नीड़ की ओर।
जंगली शूकर—महिष अनेक,
भयानक जन्तु एक से एक।

और मृग-मद से मृग हो मत्त,
चौकड़ी भरते हुए प्रमत्त।
केहरी, कुञ्जर, कमठ कठोर
चले निज निज आश्रमकी ओर।

दिवस जाता था प्रिय अम्लान,
निशा आती थी शोभामान।
संधि करती थी संध्या रम्य,
चमकता था वन प्रान्त अगम्य।

नंदिनी तत्क्षण संध्या जान,
रवि-किरण सी सौंदर्य-निधान।
ककुभ को करती हुई पुनीत,
चली आश्रम को लोकातीत।

अनुगमन करते हुये महीप—
चले कुछ क्षण में मनुकुल-दीप—
उपस्थित आश्रम में सम्राट—
हो गये। जहां देखती बाट—

खड़ी थीं वे विदुषी अभिराम,
दक्षिणा शोभामयि सद्धाम।
नृपति सह सुरभी का सत्कार,
किया आर्या ने विविध प्रकार।

पिलाकर प्रथम वत्स को दुग्ध,
किया दोहन पय पुनः विशुद्ध।
यज्ञ-हित हो प्रसन्न सविशेष,—
दिया ऋषि को उसमें से। शेष—

स्वयं भार्या सह विधिवत् पान,
किया भूपति ने अमिय समान।
नंदिनी की सेवा में लीन,
हुये फिर से राजर्षि प्रवीन।

सुलाकर प्रथम उसे नरदेव,
बाद में शयन किया स्वयमेव।
हुआ फिर मंजुल वही प्रभात,
यथाक्रम हुआ वही रविभात।

तीसरा सर्ग—वरदान

प्राप्त कर स्वर्णिम प्रातःकाल,
नंदिनी–सेवा–रत भूपाल—
नित्य हो जाते सहित उमंग
लगे रहते छाया से संग।

इस तरह इक्किस दिन पर्यन्त,
किया व्रत विध पूर्वक साद्यन्त।
सुरभि बाइसवें दिन हे मित्र,
जहाँ थी हिम-गिरि-गुहा विचित्र।

गयी उस ओर परीक्षा हेतु,
साथ ही थे वे रवि-कुल-केतु।
विचारा उसने जो यह भक्ति—
दिखाते नृप मुझ मे अनुरक्ति—

वस्तुतः है सच्ची या ढोंग,
आज निर्णय का मिला सुयोग।
अस्तु, करके इस तरह विचार,
सिंह मायामय कर तैयार।

कर गई वह गिरि गुहा-प्रवेश,
शैल पति-सुषमा सुभग नरेश—
देखने में थे अति लवलीन,
प्राकृतिक दृश्य नवीन नवीन।

हिमाच्छादित सित वर्ण सुरम्य,
उच्च अति उच्च शिखर थे भव्य।
प्रभामय औषधियो की कान्ति,
मनोरम दीप शिखा की भ्रान्ति—

सहज ही उपजाती थी। शेष—
दृश्य भी थे रुचिकर सविशेष।
इधर था खेल रहा सुप्रकाश,
उधर करता तम तोम निवास।

अहर्निशि का अद्भुत संयोग,
उपस्थित था त्यों मधुर वियोग।
यक्ष, किन्नर, गंधर्व-समाज,—
विचरते थे। सेवा वनराज—

चाव से करता था। हिमवान—
उन्हें करता था अभय प्रदान।
देवगण कहीं सोमरस-पान—
कर रहे थे। किन्नरि मृदु गान—

गा रही थीं कोकिला समान,
कहीं सुर, सुर-बालायें स्नान—
और जल क्रीड़ा सहित उमंग,—
कर रही थी सब एकहि संग।

नव पल्लव पर, घन उज्वल पर,
पर्णप-पर्ण पर, नवल कमल पर।
कल-कल रव पर, वन-उपवन पर,
नभचरचय पर, मलय पवन पर,

शशक, शलभ पर, हय, गजदल पर,
तृणपर, सर पर, उटज अमल पर।
खग-कलरव पर, पथ मनहर पर,
अचल गगन पर, झर-झर स्वर पर।

हो रहे थे नृप मुग्ध निहार,—
दृश्य। इतने में करुण पुकार—
दुःख से कातर भय से भीत—
सुनी सब भाव हुये विपरीत।

हुये वे उसी ओर आकृष्ट,
जहां था वह संघटित अनिष्ट।
कातरा, भय विह्वला पुनीत—
नंदिनी-सम्मुख व्याघ्र अभीत—

खड़ा था। देखा हुये अधीर,
क्रोध से थर थर सकल शरीर—
हुआ कंपित। ज्यों थर थर वेत्र—
कांपता। रक्त वर्ण युगनेत्र—

हो गये। बोले, "रे उद्दण्ड,
ठहर देता हूँ तुझ को दण्ड।"
इस तरह कह शर-हित निज हाथ,
उठाया किन्तु साथ ही साथ—

हुये आश्चर्य चकित प्रणवीर,
रिक्त शर से पाया तूणीर।
हँसा उस समय सगर्व मृगेन्द्र,
कहा उसने फिर "हे राजेन्द्र,

मानता सर्वविजयक्षम आप,
किन्तु मम सम्मुख ये शर चाप—
व्यर्थ हैं। तरु को चण्ड समीर—
किया करता उत्पाटन धीर।

"अद्रि-उत्पाटन में कृत कार्य—
हुआ वह कब बतलायें आर्य ?
त्रिलोचन-सेवक, मित्र-निकुम्भ,
लोग कहते हैं मुझ को कुम्भ।

"वृक्ष जो देवदारु के आप—
देखते हैं। कैसे चुपचाप—
खड़े हैं। इन्हें शिवा ने स्वतः—
किया है सिंचन विधि से। अतः—

प्राप्त है इनको उनका प्यार,
और मुझ पर रक्षा का भार—
सौंप, वे बोली मुझ से स्पष्ट,
'पूर्ववत् करें न बन गज नष्ट।'

"इसलिये रूप भयानक धार—
कहेरीका, तुम यहां विहार—
करो सुख से।' हे परमोदार,—
जगत जननी आज्ञा अनुसार—

"यहां रहता हूं। कर आखेट—
भरा करता हूँ अपना पेट।
नंदिनी का कर अन्त प्राणान्त,
करूंगा उदर—दरी को शान्त।"

स्मरण करके शिव-शिवा-प्रसाद,
नृमणि यों बोले रहित विषाद।
"नंदिनी गुरु-धन रक्षित-वस्तु,
निवेदन इसीलिये है अस्तु।

"मुझे भक्षण करके मृगराज,
क्षुधा निज शान्त करो तुम आज।"
"नवल वय टपक रही हैं कान्ति,
नृमणि क्यों करते हैं उत्क्रान्ति?

"हो रही सचमुच तुमको भ्रान्ति,
अराजकता, ध्रुव और अशान्ति—
विश्व में होगी निःसंदेह,
दक्षिणा—दशा सुमति गुणगेह—

दुःखमय होगी। यदि तव मीच,—
हुई। वह चित्र न सकता खींच।
आप ही हैं उनके आधार,
स्वर्णमय उनका यह संसार।

"आपसे ही है दया—निधान,
आपको ही गति, मति, निर्वाण—
समझती हैं वे रमणी-रत्न,
बचा लें उन्हें कृपा कर यत्न।

"मरण तव नहीं इसीसे इष्ट,
विचारें आप स्वयं है शिष्ट।
आप हैं चक्रवर्ति सम्राट,
भोगिये सुख से विभव-विराट।

"कामिनी, कंचन का यह लोभ!"
"आप क्या हैं ऐसे निर्बोध!"
"यह न साधारण धेनु समान"
"आपकी भावुकता श्रीमान्!"

"सुता यह कामधेनु की मित्र !"
"नाम यह कल्पित स्वयं विचित्र !"
"मोह क्या ? क्षण भंगुर है देह !"
"इष्ट साधन आत्मा का गेह—

"इसे सब कहते रहित विवाद,
इसी से प्रभु का गुणानुवाद—
सुधी जन कर भवसागर पार—
आर्य, करते हैं करें विचार।

पुरुष के पौरुष का आधार,
भला फिर कैसे यह निस्सार।"
"निधन से इसके हैं अपकीर्ति,"
"निधन से तव मेरी सत्कीर्ति !

"मृत्यु से सुरभी के नर नाथ,
जगत यह होगा नहीं अनाथ।
मृत्यु से तव हे करुणागार,
उलट जायेगा यह संसार।

"अतः अब कर इसका प्राणान्त,
करूंगा उदर-दरी को शान्त।"
"सुसम्मति मान्य नहीं भवदीय,"
"प्रार्थना है फिर वही महीय।"

"विनय से, नय से है अनुरोध,
मृगाधिप, व्यर्थ विवाद विरोध।
आज होगा जब शुचि दिवसात,
वत्स वह होगा दुखी नितान्त।

"वर्णनानीत दुःख यह देव,
किस तरह देखूंगा स्वयमेव।
हरे! उसका कृपिका अभिशाप,
उभय देंगे नित-प्रति त्रय ताप!

"मुझे भक्षण कर के मृगराज,
क्षुधा निज शान्त करो तुम आज।"
मुक्त-पद-ग्राह्य यमक-सा शेर,
घूम कर बोला "अब क्या देर।

"दीजिए निष्ठुर, अपने प्राण,
कीजिये सुरभी का ही त्राण।
अस्त्र से रक्षण रक्षित अंश,
नहीं कर सके स्वकुल-अवतंश।

"आप हैं तब बिलकुल निर्दोष,
सैकड़ों गायें देकर तोष—
गुरू को दे सकते श्रीमान,
इसीमें निहित जगत-कल्याण।"

त्राण सुन सुरभी का कुलचंद,
प्राप्त कर लोकोत्तर-आनन्द—
हुये प्रमुदित। नृपने सोत्साह,
(हो गयी पूरी मानों चाह)

समर्पण सादर किया शरीर,
धन्य हो आर्य, धन्य हो वीर।
यशः सम्मुख, यह भौतिक देह,
विज्ञ कब रखते हैं सस्नेह!

दर्शको ! लो निज आंखे मीच,
लेखनी ! रुक यह दृश्य न खींच ।
भला यह भी है कोई दृश्य !
अरे यह क्या ! हैं सिंह अदृश्य !

हुयी तत्क्षण नभ-गिरा गंभीर-
'आपसे आप स्वयं हैं वीर ।
धन्य हैं आप, धन्य हैं त्याग,
धन्य गोभक्ति, धन्य अनुराग ।'

हर्ष से लगी नाचने सृष्टि,
सुरो ने की सुमनो की वृष्टि ।
नंदनी बोली नृप से तूर्ण,
"आपकी मनोकामना पूर्ण—

"नृमणि, हो देती हूँ वरदान,
शीघ्र ही पुत्र-रत्न मतिमान—
करेंगे प्राप्त शक्र उपमान,
और बल–विक्रम–तेज–निधान ।"

"जननि था कैसा अद्‌भुत खेल,"
"किया मैंने ही प्रस्तुत खेल।
व्याघ्र मायामय था वह देव,
ठहर सकता कब तक अतएव!

"प्रकट थी मेरी इच्छा-शक्ति,
देखने को क्षितीश तव भक्ति।
हुयी प्रिय, मुझ में पुनः विलीन,
ताल होता ज्यों स्वर गत लीन।"

झुकाया श्री दिलीप ने शीश,—
नंदिनी को। पा शुभ अशीष—
आगये आश्रम में नरनाथ,
लिये सुरभी को अपने साथ।

कहा गुरु से सारा इतिहास,
प्रिया से भी नृप ने सोल्लास।
मिला सब को अपूर्व-आनन्द,
दक्षिणा-मुख पर प्रभा अमन्द—

खेलने लगी। विलोचन लोल,
मुस्कराये। युग गोल कपोल—
हो गये अरुण वर्ण। शुभ अंग,
हुये हैं स्फुरित सभी सउमंग।

अस्तु, गुरु को कर दण्ड–प्रणाम,
वत्स सह सुरभी को सद्धाम।
पूज कर गुरु-पत्नी-पद-पद्म—
दक्षिणा–सह गुरु गौरव-सद्म।

प्राप्त कर गुरु जनका शुचि प्यार,
हुये रथ पर सम्राट सवार।
हुआ वह द्रुति गति से गतिवान,
पार कर कई नगर, पुर यान—

आ गया प्रिय साकेत समीप,
हुये आल्हादित नृमणि दिलीप।
बढ़े आगे था अद्भुत ठाट,
राज–पथ सजा, सजी थी हाट।

प्रजा का ललित प्रेम उपहार,
प्राप्त कर मंत्रि-वर्ग-सत्कार।
राज-मन्दिर में किया प्रवेश,
मिली इस विध सुख शांति-अशेष।

चौथा-सर्ग—पुत्र-प्राप्ति

कवि कलाकार, कमनीया काव्य-कलाके—
हैं अनुपमेय आदर्श आप उपमाके।
ले सार तत्व सम्यक् सयत्न वसुधा का,
गागरमें सागर भरा समग्र सुधा का।

शिशिरांत हुआ अब प्रिय कुसुमाकर आया,
कोकिल–कुल ने पंचम में गाना गाया।
सर–मध्य अमल इन्दीवर मंजुल फूले,
अलिदल मँड़राते उनपर भूले-भूले।

लेकर पंकज–मकरन्द कहीं उड़ जाते,
फिर खिंचे हुये से शीघ्र वहीं पर आते।
रजनी नलिनी-सँग, दिवस जलज-सँग जाता,
मधु–लोभी मधुकर भला कहो क्या पाता ?

तो भी उसको संतोष नहीं है होता,
आजीवन जीवन–तत्व इस तरह खोता।
है प्रेमी जन की कथा अकथ्य निराली,
है उदाहरण के लिये उचित मधुपाली।

रजनी गंधा की गंध कहीं रह रह कर,
हो रही व्याप्त है तिर्यगूर्ध्वं, मह मह कर।
झुकझूम लिपटती हैं तरु से लतिकायें,
दौड़ीं सागर से मिलने को सरितायें।

रवि तनया लीला, हाव-भाव दिखलाती,
हो रही तरंगित कल कल मिस है गाती।
सुठि भँवर-नाभि-दिखला दिखला अठिलाती,
ऋतु-पति, पति पा अपने को भूली जाती।

शुचि विमल धार साड़ी सी शोभा देती,
है बनी नवेली-सी मनको हर लेती।
है वनी 'वनी' सी 'बना' बना वन प्यारा,
उस पर उसने अपना तन, मन सब वारा।

प्रिय चित्ताकर्षक सुखद और मन भाया,
तरुवर रसाल पर शुकने नीड़ बनाया।
क्यों सेमर तरु ये मित्र, व्यर्थ ही फूलें, ?
ये रूप-राशि पर अपने नाहक भूलें।

गुण-हीन रूप सम्मान नहीं है पाता,
गुण-गंध-हीन सेमर है यही बताता।
किंशुक प्रसून देखो कितने चटकीले,
हैं सेमर से ये भी अतिशय गर्वीले।

समता गुलाब की करने को उद्यत हैं,
अति मूढ़ मूढ़ता में ही कैसे रत हैं?
नायक-सा सज कर मलयानिल है आता,
मृदु झोके से कलिका प्रियतमा जगाता।

हँस पड़ती हैं तब कलिकायें खिल-खिल कर,
संकेत अनूढ़ा-सा करतीं हिल-हिल कर।
बौरे रसाल, कचनार, कदम्ब सुहाये,
फूली सरसों है त्यों गुलाब मनभाये।

मानो प्रेमाश्रु मधूक खड़े टपकाते,
हैं नाना वर्ण विहंग चहकते गाते।
है प्रकृति नवोढ़ा बनी छटा छहराती,
जगती में जीवन-ज्योति अपूर्व दिखाती।

आबाल वृद्ध, तरुणी तन, तरुण हृदय में,
वन 'विजन' विश्वमें रवि, शशि, तारकचयमें।
सुषमा वसंत की फूट पड़ी कण-कण में,
खिंच गये दक्षिण-नृपति परस्पर क्षण में।

• • •

थी यथा गर्भगत पा जयंत इन्द्राणी,
शोभित त्यों हुई विशेष गर्भ-सह रानी।
अन्तःसलिला ज्यों सरस्वती सरिता की—
सुषमा त्यों हुई विशेष दिलीप-प्रिया की।

कृश तन पर थे कुछ अलंकार छवि पाते,
कवितालंकार समान सौख्य उपजाते।
आनन ऊषा-कालीन चन्द्र-सा न्यारा—
था शोभनीय उडुगण-सा भूषण प्यारा।

अवलोक प्रिया को थे दिलीप सुख पाते,
वे आदर करते थे विशेष बलि जाते।
अति मंजु कथा वीरों की उन्हें सुनाते,
हर्षाम्बुधि में दम्पति निमग्न दिखलाते।

कृशता शरीर की दिन प्रति बढ़ती जाती,
थी और अलसता अपना रंग जमाती।
सखियाँ सुहासिनी रम्य विनोद मचातीं,
क्या देंगी हमको? कह करके खिलजातीं।

वे कनक-छड़ी-सी, कल्पलता-सी भासित,
होती थीं विद्युत रेखा-सी सुप्रकाशित।
यद्यपि कहते नृप से राज्ञी सकुचातीं,
तो भी प्रस्तुत अभिलषित वस्तु वे पातीं।

प्रथमावस्था का अन्त दिवस कुछ बीते,—
हो गया पुष्ट सब अंग हुए मन चीते।
युग पीन पयोधर ने कठोरता पायी,
मुख पर त्यों उनके मंजु श्यामता छायी।

मुकुलित सरोज पर भ्रमरावलि हों ऐसे,
या स्वर्ण-कलश पर नीलोत्पल-दल जैसे।
यह भी उपमा जँचती है मुझको फीकी,
अब सुनिये कहता हूँ मैं अपने जी की।

है सर्वोपरि उपमान मुझे यह भाया,
शुचि, स्निग्ध, मातृ-सुस्नेह सुभग उतराया।
जो कुशल चिकित्सा-शास्त्र जानने वाले,
थे अपने को स्ववैद्य मानने वाले।

वे भिषगरत्न दिव्यौषधिया दिलवाते,
हो पुष्ट गर्भ अनुभूत योग बतलाते।
पुंसवनादिक जो संस्कार अति प्यारे,
वे विध-विधान से किये नृपति ने सारे।

पा संस्कार बढ़ चली देह की आभा,
ज्यों पा वसन्त बढ़ती लतिकाश्रित गाभा।
धीरे २ जब प्रसव-काल नियराया,
वसुमती सती ने रङ्ग और ही पाया।

अति स्वच्छ नीर से पूरित सर, सरितायें,—
हो गईं, हुईं आलोकित शुभ्र दिशायें।
हो गई धरित्री श्री-समृद्धि से संयुत,
हो गये सभी अनुकूल योग, ग्रह मारुत।

ऊषा ने ज्यों ही रवि-आगम बतलाया,
राज्ञी ने त्यों ही रवि-कुल-रवि प्रकटाया!
हो नभो-कुक्षि से चन्द्रधरा पै आया,
सागर से निकला रत्न चारु मन भाया।

———

पांचवा सर्ग—अश्वमेध

धाय से पुत्र-जन्म-सम्वाद,
सुना नृपने उमड़ा आह्लाद।
धौत करके मस्तिष्क-प्रदेश,
नयन में उतरा जो था शेष।

दिया क्या नहीं नृपति ने दान, ?
किया विप्रों का बहु सम्मान।
और ही बना राज-प्रासाद,
तड़ित-सा फैला यह सम्वाद।

अनेकों रम्भा शची समान,
रमणिया गाती मंगल गान।
बना अमरी भी नारी वेश,
लूटती थीं आनन्द अशेष।

सुरों ने की सुमनावलि वृष्टि,
थिरकने लगी हर्ष से सृष्टि।
महोत्सव हुआ वर्णनातीत,
नाम 'रघु' रक्खा गया पुनीत।

देख सुत-आनन को नरदेव,
लुटाते मणि-मुक्ता स्वयमेव।
अन्न प्राशन, निष्क्रमण उदार,
समय पर वैदिक मतानुसार—

किये नृपने विधि युत सब कार्य,
किया करते हैं जैसे आर्य।
और वह बालक प्रतिभावान,
लगा बढ़ने शशि-कला-समान।

देख अर्भक की उज्वल कान्ति,
सभी को होती रवि की भ्रान्ति।
लिये रहते सब हाथो–हाथ,
दक्षिणा कभी, कभी नरनाथ।

दिखाते कौतुक कभी अनूप,
जिसे लख सुख पाते थे भूप।
कलित क्रीड़न–कूदंन से काम,
उन्हे था केवल आठोंयाम।

नूपुरों की ध्वनि से अभिराम,
अजिर होता चिर शोभा–धाम।
देख कर शैशव-छटा अमंद,
मिला नरपति को ब्रह्मानंद।

जनक–जननी को नित्य प्रणाम,
लगे करने अब सद्‌गुण धाम।
और कुछ बड़े हुए मतिमान,
प्राप्त जननीसे अक्षर ज्ञान—

लगे करने विधि पूर्वक नित्य,
सन्निहित है जिसमें साहित्य।
और साधारण गणित–विधान—
हुये हैं ज्ञात सरल विज्ञान।

मनन रवि-कुल का कुल इतिहास—-
किया फिर अनायास सोल्लास।
मिला माँ से जो शिक्षा-दान,
अध्ययन में रुचि बढ़ी निदान।

बढ़े कुछ और यज्ञ उपवीत,
हुआ जैसी मनु–कुल की रीति।
प्राप्त कर माता-पिता निदेश,
किया गुरु-कुल में सविध प्रवेश।

सर्व साधारण शिशु के संग,
लगे पढ़ने वे सहित उमंग।
गहन विषयों में उत्कट बुद्धि,
सहज ही घुस कर लेती शुद्धि।

व्याकरण, अन्वय अरु व्युत्पत्ति,
शब्द–उत्पत्ति अर्थ–उपपत्ति।
पुनः स्वाध्याय वेद वेदाङ्ग—
किया है रघु ने सांगोपाङ्ग।

समय का बहुत अल्प ही भाग,
लगा गुरु–कुल करने में त्याग।
ग्रहण कर गुरुजन–आशीर्वाद,
सुशोभित किया राज–प्रासाद।

युद्ध–विद्या–गत जो विज्ञान,
शब्द–वेधी शर–शिक्षा–ज्ञान।
जनक से लेकर सभी सयत्न,
हुये शोभित अब रवि–कुल–रत्न।

युवावस्था का प्रादुर्भाव,—
हुआ शिशुता का पूर्ण अभाव।
आ गयी मुख पर द्विगुणित कान्ति,
साथ ही ओज, क्रान्ति अरु शान्ति।

यथा पाता सुषमा मृगराज,
विलसता नभ में ज्यों द्विजराज।
हुए उद्भासित त्यों युवराज,
गया बलि उनपै राज-समाज।

सर्वगुण-सम्पन्ना अनुकूल,
भारती-सी रति-सी सुख-मूल।
रूपसी युवती-संग विवाह,
किया नृपने रघु का सोत्साह।

जान कर सब प्रकार से योग्य,
तनय को ले भूपाल मनोज्ञ।
ऊनशत अश्वमेध सविधान,
कर चुके हैं जब सहित प्रमाण।

यज्ञ सौवें का होम-तुरङ्ग,
लिये सैनिक रक्षक निज सङ्ग।
विचरने लगा मही पर अतः—
शक्र ने हरण किया हय स्वतः।

घटित अघटित घटना पर वीर,
हुये आश्चर्य चकित चित धीर।
सैनिको से बोले नरनाथ,
"किया क्या हमने रह कर साथ॥

कौन ऐसा है वह उद्दण्ड?
अभी है करमें शर-को दण्ड।"
नन्दिनी तत्क्षण हुयी प्रत्यक्ष,
अंग-निःसृत-जल उसका स्वच्छ—

लगा कर नेत्रो में नृप दक्ष,
इन्द्र से बोले देख समक्ष।
"यज्ञ—रक्षक कहलाते आप,
पुनः यह कैसा कार्य कलाप?

"स्वयं ही यज्ञ कर रहे नष्ट,
व्यर्थ ही उठा रहे हैं कष्ट।
यही क्या उचित आपका ध्येय,
न इसमें प्रेय, न इसमें श्रेय॥"

गर्वयुत उत्तर में अमरेन्द्र,
नृमणि से बोले—"हे राजेन्द्र।
त्रिलोचन से शिव, हरि से ईश,
तथा शतक्रतु से मुझे महीश।

"जानता है सारा संसार,
न इसमें संशय राजकुमार।
करेंगे तव पितु वह पद प्राप्त,
सहन कर लें यह कैसे आप्त?

"यशः-रवि पड़ता जिससे मन्द,
उसे बढ़ने दें हम स्वच्छन्द?
भला कैसे बतलायें आर्य,
हुआ इससे मुझको अनिवार्य—

"रोकना गति-विधि का कर यत्न,
न समझे अब भी क्या नर-रत्न?
लौट जाओ कर त्याग तुरङ्ग,
नहीं होगा मख पूर्ण अभङ्ग।

सगर–सुत–वृत्त तुम्हें है ज्ञात !
कथा यह जग में है परिव्याप्त,
लौट जाओ कर त्याग तुरङ्ग,"
"रिक्त शर से है नहीं निषङ्ग ॥"

"युद्ध–इच्छा ही यदि भवदीय—
विरति होगी उससे न मदीय।"
तूण से शर निकाल कर तूर्ण,
किया रघु ने प्रणिपात प्रपूर्ण।

वृत्रहा ने भी वाण कराल,
शक्ति भर छोड़ दिया तत्काल।
प्रथम जो मिला मनुज का रक्त,
लगा पीने वह हो अनुरक्त।

कुपित हो रघु अजस्र शर–जाल,
लगे बरसाने, मानो काल—
लगा हो करने ताण्डव नृत्य,
चित्र से उभय पक्ष के भृत्य—

देखने लगे तुमुल संग्राम,
हुए शिव से प्रदीप्त गुण ग्राम।
धरातल, नभतल में आतंक,
छा गया प्रकटित हुआ मयंक।

लुप्त रवि-मण्डल हुआ नितान्त,
उपस्थित होगा क्या प्रलयान्त?
किया वासव गतिका अवरोध,—
शिलीमुखने। अमरोंको बोध—

हुआ, तब बोले वे साश्चर्य,
"धन्य सर-शिक्षा तव नृपवर्य।"
तीक्ष्णतर तीक्ष्ण शिलीमुख तीन,
लिये रघु ने चुन शीघ्र नवीन।

एक से प्रत्यंचा को भ्रष्ट,
अपर से उस सुकेतु को नष्ट।
तीसरे से स्यन्दन गति-हीन,
दिया कर क्षणमें सब विष क्षीण।

जलद को हटा यथा दिवसेश,
प्रकट होता है त्यों अमरेश।
छिन्न कर कौशल से शरचक्र,
प्रकट हो बोले होकर वक्र।

हुए जो निर्गत मुख से वर्ण,
फोड़ते थे मानो युग कर्ण।
हुए मुझको ऐसे परिज्ञात,
हुआ शशि से ज्यों गरल प्रपात।

"समझ लें पक्ष मदीय अतर्क्य।"
समझ लें पक्ष मदीय अतर्क्य।"
"कहाँ यह शिक्षा मिली अमूल्य?"
"कहा यह शिक्षा मिली अमूल्य?"

"सजग हो जायें शीघ्र महीन्द्र,"
"सजग हूँ और सतर्क रथीन्द्र।"
किया वज्री ने वज्र-प्रहार,
हो गये मूर्छित राजकुमार।

रही मूर्छा उनकी क्षण एक,
हुए उठ खड़े त्वरित सविवेक।
युद्ध–हित देख पुनः सन्नद्ध,
शक्र बोले "गुणमणि आवद्ध—

"कर लिया तुमने राजकुमार,
धन्य बल, विक्रम, धन्य विचार।
हस्तलाघवता को भी धन्य,
आज तक देखा कहीं न अन्य।

"अश्व–तज मन–वांछित वरदान,
प्राप्त कर सकते हैं धीमान।"
"तुरग देना, यदि अस्वीकार,
मिले फिर वर यह मुझे उदार।

"यज्ञ यद्यपि निर्विघ्न समाप्त—
नहीं हो सका किन्तु फल–प्राप्त—
करें मम जनक देव, देवेश,"
इन्द्रने कहा "तथास्तु नरेश"।

गये निज अमर-पुरी सुरराज,
अयोध्या में आये युवराज।
पितृ-चरणों में किया प्रणाम,
सुनाया कुल वृत्तान्त ललाम।

ऊनशत यज्ञ हुआ सविधान,
हो गया प्रस्तुत स्वर्सोपान।
राज्य सुत को दे धर्मधुरीण,
आत्म-चिन्तन-रत हुए प्रवीण।

छठा सर्ग—शुभ-संकल्प

पा पितु से साम्राज्य, राज्यका भार ग्रहण कर,
राज–दण्ड ले हुए प्रजा-पालन में तत्पर।
गुप्त मंत्रणा नित्य मन्त्रियों से वे करते,
सद्विवेक से नीति-तत्व चुन हियमें धरते।

विद्वानों से राज सभा थी सदा समादृत,
कवि–कोविद होते थे नृप से सदा पुरस्कृत।
कुशल गुप्तचर गुप्त भेद थे सभी बताते,
पर राष्ट्रों का समाचार तक सम्यक् लाते।

शरद-शर्वरी-चन्द्र-सदृश रघु-किर्ति-पताका,
आसमुद्र नभ मध्य हुई विलसित कर शाका।
प्रिय रसाल-तरु-तले स्मिता वदना कन्यायें,
और नागरी गुणागरी कुल, कुल ललनायें।

गाती थीं नृप-गुणावली को उच्च भाव से,
कीर्ति-कौमुदी छिटकाती थीं बड़े चाव से।
मिलता हर्षोल्लास उन्हें था इसके द्वारा,
क्यों न मिले ! था चरित नृपति का अनुपम प्यारा।

तत्कालीन अयोध्या की थी छटा निराली,
वह कवि कौन समर्थ भाग्यशाली गुणशाली—
जो वर्णन कर सके यथावत् उसकी शोभा,
स्वयं भारती मूक हुईं लख जिसकी शोभा।

कहीं ऊष्ण आवास बना था मनोमुग्धकर,
कहीं शीत आवास बना था अतिशय सुन्दर।
निशिमें तड़ित-प्रकाश तिमिर को दूर हटाता,
स्वर्ग लोक ही बस उसकी समता कर पाता।

कहीं कुंज-गृह, कहीं लता-मण्डप सुखदाई,
कहीं उत्स थे और कहीं रुचिरा अमराई।
शत-शत शतदल पूर्ण सरोवर निकट वहीं पर,
फल-फूलों से लदे वृक्ष थे कहीं-कहीं पर।

कारागृह था, किन्तु वन्दियों से खाली था,
रुग्णालय था, किन्तु रोगियोंसे खाली था।
न्यायालय था, पर न वहा था प्रार्थी कोई,
खुले हुए थे सत्र न था भिक्षार्थी कोई।

जब से रघु का राज्य हो गया धरणी तल पर,
गो-द्विजका साम्राज्य हो गया धरणी तल पर।
राज्यान्तर्गत विप्र सर्वथा दण्ड-रहित थे,
क्योंकि सर्वदा अशुभकर्म से वे विरहित थे।

वर्षा हुई व्यतीत शरद शोभन ऋतु आई,
दिग-दिगन्तमें रुचिर सुखद सुषमा-श्री छाई।
वन्दीजन-से भ्रमर लगे उत्साह बढ़ाने,
सुप्तभाव को मनो युक्ति से लगे जगाने।

पाने को वह उठी राज्य–श्री की उपमा को,
किन्तु कर सकी प्राप्त नहीं उसकी समता को।
पंक-रहित मेदिनी भली लगती है कैसी,
धर्मशील रघुराज–राज्य-सत्ता हो जैसी।

इन्द्र धनुष नभ मध्य नहीं अब दिखलाते हैं,
ज्यों स्वराज्य में दस्यु नहीं आश्रय पाते हैं।
वर्षा की वह शक्ति सुप्त हो गई कहां पर!
चपला की वह चमक लुप्त हो गई कहां पर!

पाकर शक्ति मदान्ध गर्विता थी वह कैसी,
स्वार्थअन्ध पूंजीपतियों की लिप्सा जैसी।
वे वंचक, वक–वृन्द चले अब गये कहां पर!
त्यों विवेक धी राजहंस आ गये यहां पर।

विचरण करते हुए दीखते हैं अब खंजन,
प्रिय स्वराज्य–उपयोग कर रहे अथवा सज्जन।
निर्मल जल से पूर्ण मनोरम सर, सरितायें,
वापी, कूप समग्र, कमल–वन, सोम–लतायें—

चित्ताकर्षक हुईं—सौख्य वे उपजाती हैं,
मघवाधनु-सी पंक्ति शुकोंकी छवि पाती हैं।
जलाशयों में मीन अभय हो उछल रही हैं,
फुल्ल कमलिनी से सुगन्धि मृदु निकल रही है।

अन्तरिक्ष है स्वच्छ धूल का नाम नहीं है—
किंचित जलकण-पूर्ण श्वेत घन कहीं कहीं है।
सुख मिलता है अतः चक्षुओं को अम्बर से,
रहा धूप का क्लेश नहीं अब दिनकर-कर से।

सुखद है सबको इस भांति से,
शरद की सुषमा मन हारिणी।
प्रकृति है निज रूप बिखेरती,
विजन में वनमें अति हर्ष से।

पा यों स्वर्ण सुयोग सैनिकों से नृप सत्तम,
बोले सहउल्लास "अपेक्षाकृत ऋतु उत्तम।
प्राप्त हुई है नहीं शीत-आतप का डर है,
करने को दिग् विजय यही तो शुभ अवसर है।

"आर्य-संस्कृति-हीन बनेचर भोले भाले,
पड़े हुए हैं कितने ही नर-पशु मतवाले।
पशुता को कर दूर उन्हें हैं मनुज बनाना,
देकर ज्ञानालोक उन्हें सन्मार्ग बताना।

"विश्वमार्यम् कृणमंतम् का पाठ याद है?
प्रभु का यह आदेश सर्वथा निर्विवाद है।
अस्तव्यस्त हैं भारतीय नृप-मण्डल सारा,
करना है संगठित उसे ध्रुव लक्ष्य हमारा।

"कर अनेकता दूर एकता की वेदी पर,
एक चक्र में ले आना है उसको सत्वर।
"संगच्छध्वम्" आदि तत्व को है बतलाना,
प्राण होमकर एक राष्ट्र है तुम्हें बनाना।

'वीर दर्प से उठो क्षत्रियो क्रांति मचा दो,
स्वीय तेज-बल-वीर्य विश्वको तुम दिखला दो।
प्राप्त करो निज प्राप्य शीघ्र रणरंग मचा कर,
दीख रहा है हमें भविष्योज्वल-उज्वलतर।

फिर वह शुभ संकल्प हुआ प्रतिध्वनित धरा पर,
'दीख रहा है हमें भविष्योज्वल–उज्वलतर'।
तरु–कोटर में विहग–कुमारों ने भी गाया,
गिरि–उपत्यका तत्शृङ्गो ने त्यों दुहराया।

मानो था कह रहा सिन्धु भी गरज २ कर,
'दीख रहा है हमें भविष्योज्वल–उज्वलतर।'
पुर–सुन्दरिया उत्तरीय अपना समेट कर,
गाने लगीं समोद 'भविष्योज्वल–उज्वलतर'।

स्रोतस्विनी पुनीत और लोनी लतिकायें,
चन्द्र–ज्योत्सना मंजु तथा वारिद–मालाये।
रणोन्मत्त हो झूम–झूम सैनिकगण सस्वर,
कीर्तन करने लगे 'भविष्योज्वल–उज्वलतर'।

करके तुमुल निनाद शंख–ध्वनि हुई उसी क्षण,
सज्जित होने लगे धर्म विजयी योधागण।
रवि की परिधि समान ढाल, तूणीर और शर,
लगे झूलने प्रति सैनिकके पृष्ठ भागपर।

तड़ित–छटा–सी पड़ी कंचुकच्छटा दिखाई,
मदकल कुंजर देख घटा घन की सुध आई।
निकले चपल तुरंग वायु से बातें करते,
अन्तरीक्ष में थे मानों वे सदा विचरते।

रथ में रथी समेत सारथी सजे सजाये,
और अनेकों वायुयान चालकगण लाये।
वे सब इच्छा–शक्ति मात्र से ही उड़ते थे,
नहीं अन्य उपकरण उन्हें देने पड़ते थे।

जलयानों की भी न कमी थी मित्र, वहा पर,
पनडुब्बिया अनेक चल पड़ीं सज्जित होकर।
जल, थल, त्यों आकाश भर गया भीम नाद से,
और साथ ही साथ द्विजों के स्वस्तिवाद से।

करके नृपवर यज्ञ–कार्य विधिवत सम्पादित,
सह तुरंग आ गये किया सबको आह्लादित।
रविकुल–कौशिक केतु उन्होंने स्वयं उड़ाया,
जिससे वीरो ने पाया उत्साह सवाया।

शुभ-संकल्प

पुष्प-वृष्टि की राशि-राशि पुर-कन्याओं ने,

गाये मंगल गान विजयके ललनाओं ने।

श्रद्धा, भक्ति समेत सबोंने शीश झुकाया,

विशद गुणोंको पुनः सम्मिलित स्वर से गाया।

त्रिभुवन-जयी स्वदेश-दुलारा,

जनपद-प्यारा केतु हमारा।

लक्ष-लक्ष जन लक्ष एक हो,

अक्ष-अक्ष सब अक्ष एक हो।

मर मिटने की अमर टेक हो,

तव प्रति हम मे सद् विवेक हो।

कितना उच्चादर्श तुम्हारा, ॥ जनपद० ॥

कोटि-कोटि खर-तर कृपाण से,

रक्षित तू प्रिय अधिक प्राण से,

कोटि-कोटि कल कंठ गान से।

स्वाभिमान से और मान से,

हो मुखरित महिमंडल सारा ॥ जनपद० ॥

ॱॱॱॱ

शतघ्नियों से किया पुनः अभिवादन गुरुतर,
उसी समय चल पड़ी नीरनिधि तुल्य गरजकर।
चतुरंगिणि वह चमू—हुआ नभ धूल—धूसरित,
दिवस निशा में आज हो गया है परिवर्तित।

मरु को मालव तथा स्वच्छ वन-प्रान्तर करते,
करते अरि—उच्छिन्न, सुयश, श्री को अपहरते।
धसकाते-से धरा कँपाते शत्रु-हृदय को,
दूर भगाते हुए दीन दुखियों के भय को।

पूर्व सिन्धु की ओर बढ़े जाते थे ऐसे,
चतुस्कंध सह स्कंद चले जाते हो जैसे।
सुह्मदेश में वायुयान उनके मँड़राये,
लेकर सुह्म—नरेश भेंट तब सम्मुख आये।

अति विनीत हो नम्र उन्होंने प्राण बचाया,
महाराज से अभय दान भी तत्क्षण पाया।
करके अभय प्रदान आगये वंगदेश में,
प्रकृति—नटी-सा रम्य, सौम्य, सुषमा अशेष में।

सातवां सर्ग—दिग्विजय

वंगदेश के भूपतियों ने शंख बजा कर,
किया मार्ग–अवरोध तरणि निज सजा २ कर।
कैसे होगी भला भानु–जुगनू की समता, ?
द्विघटिका मे शेप हो गई संगर-क्षमता।

वीर सैनिको से महीश वे गये खदेड़े,
सलिल–मग्न कर दिये सुदृढ़तम उनके वेड़े।
शरणागत ले धान–पान नृप–मंडल आया,
शरणार्थी पर कब वीरो ने हाथ उठाया ?

उनहत्तर

गाड़ा विजय-स्तम्भ वहां पर महाराज ने,
अभिनन्दन फिर किया मुदित हो नृप-समाज ने।
कपिशा सरि कर पार चले उत्कल के आगे,
देख प्राकृतिक दृश्य प्रजा-रंजन अनुरागे।

उत्कलादि कर विजय हुआ धावा कलिंग पर,
गिरि महेन्द्र पर आ धमके काकुत्स्थ नृपति वर।
किन्तु, मोह-वश तत्राधिप ने शर-वर्षाया,
चारघड़ी हो क्रुद्ध तुमुल संग्राम मचाया।

रघु ने क्रीड़ा-वश विलोक निज चाप उठाया,
धृत होकर सेनापति से वह सम्मुख आया।
करके अनुनय विनय अत्यधिक दीन भावसे,
क्षमा-यांचना की उसने फिर सत्स्वभाव से।

देकर उसको क्षमा वहीं कुछ समय बिताया,
वीरोचित सम्मान महेन्द्राधिप से पाया।
सैनिक-गण पी नारिकेल-आसव सर्वोत्तम,
दिग् दक्षिण को चले दिखाते शौर्य-पराक्रम।

पुंगी-फल से पूर्ण रम्य सागर तट-वाले,
भूपतियों ने अस्त्र स्वयं ही अपने डाले।
कावेरी के तीर वीर योद्धादल आया,
जल-क्रीड़ा-आनन्द उन्होंने खूब मनाया।

भर जल-तुण्ड वितुण्ड छोड़ते थे फौवारे,
देखा जिसने कहा धन्य हैं भाग्य हमारे।
करभी-करभ असंख्य-कमल को थे उछालते,
मतवाले गज तरु विशाल को थे उखाड़ते।

विजयोल्लास-प्रपूर्ण चले सैनिक सब आगे,
गुरु-गर्जन सुन अनय-परायण भूपति भागे।
मलयाचल की उपत्यका को देखा आकर,
वन मारीच पुनीत विहंग हारीत श्रेष्ठतर।

चन्दन-तरु से लिपट रहे थे देखे विषधर,
काल सर्प-से मणिधारी थे महा भयंकर।
मलयानिल-सेवन करते तन-स्वेद सुखाते,
पथ-श्रम करते दूर परस्पर अति हर्षाते।

चलते थे वे स्वयं या कि चलते पुर प्रान्तर,
बाद एक के एक निकट आते थे सत्वर।
वीर्यवान रघु आ पहुँचे शुचि पाण्ड्य-देश में,
पाई अविरल भक्ति उन्होंने उस नरेश में।

मणि-मुक्ता ले भेंट विनय-युत सम्मुख आया,
ग्रहण किया लख भाव वीरवर ने अपनाया।
पूषण दूषण-रहित जहां शशि बन जाता है,
रघु का दूना तेज वहां अब दिखलाता है।

अनायास ही विजित हुआ दर्दुर-मलयाचल,
सह्य-अद्रि कर पार पश्चिमाभिमुख हुआ दल।
केरल में था पहिले ही आतंक समाया,
बिना युद्ध के ही उसने निज शीश झुकाया।

मुरला से जो उठी केतकी-गन्ध मनोरम,
चढ़ी वायु के यान किया स्वागत सर्वोत्तम।
चिपके पुष्प-पराग गजों के गंडस्थल पर,
उन पर मत्त मिलिन्द लगे मँड़राने आकर।

पश्चिम दिशि के साधु नृपतियों ने सम्माना,
कौशलेन्द्र की अधीनता को सुखकर माना।
था दिग्विजयोद्देश्य राष्ट्र को सबल बनाना,
था न राज्य-विस्तारान्तर्गत एक-बहाना।

माना विजयस्तम्भ सबों ने गिरि त्रिकूट को,
विता वहीं कुछ दिवस भोग उस गढ़ अटूट को।
द्विरद-रदों ने किया कीर्तिको उस पर अंकित,
हुई अग्रसर चमू हुआ अरि-हृदय सशंकित।

वह अलंघ्य जलराशि-सदृश घन-सी घहराती,
यवन-देश में आ पहुँची तरु-पुंज गिराती।
यवनों ने शर वर्षाकर रोका प्रवाह वह,
सम्मुख शत्रु-निहार और भी हुआ भयावह।

हुए क्षत्रियगण भी संक्रुद्ध,
लगा होने भीषणतम युद्ध।
क्षत्रियो ने यवनों का ढेर,
कर दिया क्षण में लगी न देर।

हुआ युद्ध–स्थल रक्त-प्रपूर्ण,
हुआ यवनो का गर्व विचूर्ण।
न देखा किसी तरह जब त्राण,
बचाये छिप कर अपने प्राण।

अभागे भागे रणको त्याग,
खेलना सहज आग से, फाग!
मचाते कतिपय हाहाकार,
और करते कतिपय चीत्कार।

रत्न से सजा स्वर्णमय थाल,
किये नत अपना भाल विशाल—
हुए सब रघु के शरणापन्न,
भेंट दे उनको किया प्रसन्न।

उन्हों ने दिया अभय का दान,
आर्यों का है यही विधान।
प्राप्त कर यवन-भक्ति–अनुरक्ति,
प्रदर्शित हुई चौगुनी शक्ति।

सैनिकों ने द्राक्षासव-पान,
किया आ सिन्धु तीर धीमान-
उत्तराभिमुख हुए सह सैन्य,
मिटाते कृषकों के दुख-दैन्य।

क्योंकि रघु को था इसका ज्ञान,
विश्व का निर्भर-पतनोत्थान-
इन्हीं पर करता। सारा देश,—
तारिका-इव—हैं ये राकेश।

जहां होता इनका सम्मान,
वहीं होता उत्कर्ष महान।
जहां होता इनका अपमान,
वहीं होता अपकर्ष निदान।

पराजित हूण हुए तत्काल,
वश्यकर के काम्बोज विशाल।
प्राप्त कर उनसे चपल तुरंग,
चढ़े हिम-गिरि पर सहित उमंग।

प्रज्वलित औषधियां अविराम,
दीपकों का देती थीं काम।
निर्झरों का स्वच्छन्द प्रपात,
मनोमोहक होता था ज्ञात।

प्रखरतर मन्दाकिनी–प्रवाह,
बढ़ाता था असीम उत्साह।
कुसुमचय से करता संघर्ष,
और करता जल-कण को स्पर्श।

उलझता तरु से वारम्बार,
वहां करता था वायु विहार।
सुवासित–शीतल था वह अतः
मन्दता भी थी उसमें स्वतः।

युद्ध की आलोचना ललाम,
कर रहे थे जब सद्गुण–धाम।
उसी क्षण उन पर प्रस्तर–खण्ड,
फेंकने लगे कोल उद्दण्ड।

धृष्टता – उद्दण्डता – निहार,
हंसे मनुकुल-मणि परमोदार।
उन्हें दे उचित दण्ड तत्काल,
उतर आये गिरि से भूपाल।

किया किन्नरियों ने गुण-गान,
हुआ कोलों को तब यह ज्ञान।
नृपति हैं कितने उच्च–महान्,
अतुल धन दिया, किया सम्मान।

दबा कर के सीमांत–प्रदेश,
चले आगे काकुत्स्थ-नरेश।
चमत्कृत–सा करते संसार,
शीघ्र कर ब्रह्मपुत्र को पार।

प्राग ज्योतिष पुर में अवधेश,
आ गये मानो अपर सुरेश।
वहां के नृप ने आंख पसार,
अश्व-गज–रथ असीम विस्तार—

देख कर मानी हिय में हार,
पूज पद-पदम किया सत्कार।
चरण-तल मे रत्नों का ढेर,
(जिसे लख लज्जित हुआ कुवेर।)

दिया रख और जोड़ कर हाथ,
झुकाया उसने अपना माथ।
उच्च अति उच्च गयंद विशाल,
प्राप्त कर कर–स्वरूप भूपाल।

लौट आये ले कीर्ति अशेष,
कहा अमरों ने 'धन्य नरेश'।
विजित नृप पा सम्मान निदेश,
गये प्रमुदित मन निज २ देश।

कलित कीर्ति सुनी कवितामयी,
जन समागत ने कवि-वृन्द से।
सज गये पुर-गेह ध्वजादि से,
विजय-गीत सुगायक गा उठे।

इस प्रकार हुआ मख पूर्ण है,
जगत में यश-सौरभ छा गया।
अतुल जो धन-राशि मिली उन्हें,
स्व कर से कर दान दिया उसे।

आठवां सर्ग—अज-जन्म

दिवस एक शुभागम कौत्स का,
रुचिर गेह नराधिप के हुआ।
विनय से ऋषि से नरनाथ ने,
सहित भक्ति निवेदन यों किया।

"उदित पुण्य हुआ कुछ पूर्व का,
तपनिधे, तव दर्शन जो मिला।
अब दयामय, किङ्कर चाहता,
तव शुभागम—कारण जानना।

"कुशलता कहिये गुरुदेवकी ?
बटुक तो रहते सब क्षेम से ?
निवसते ऋषि-बालक जो वहां,
समुद तो निशि-वासर हैं मुने !

"सरलता जिनकी कमनीय है,
कुलकना जिनका मन मोहता।
प्रकृति के उर के अनुराग से,
चपल वे मृग-शावक हैं सुखी ?

"मधुरिमा जिनके पय की अहो,
अमृत-तुल्य सदैव वदान्य है।
मनुज से सुर से नित पूज्य जो,
सविध गो-धन-रक्षण हो रहा ?

"धनिक के कर-पीड़ित तो नहीं,
कृषक, दीन प्रजा रहती सदा ?
समय पै धन, जीवन-दान दे,
सफल जीवन तो करता प्रभो ?

"प्रिय कपोत तथा शुक–शारिका,
इतर भी विविधा विहगावली।
कर रहीं वसुयाम प्रदान तो,
मनः शान्ति, विवेक, विनम्रता ?

"गरल के परिवर्तन में सुधा,
सतत देकर जो करती मुदा।
उन सुधी विटपावलि को दुखी,
वन–गजादिक तो करते नहीं ?

"रख नहीं सकता जिसके बिना,
मनुज जीवन को क्षण एक भी,
वह समीर बिना प्रतिबंध के,
हृदय शीतल तो करता नृपे !

"उमड़ती जब पावस की घटा,
चमकती नभ में जब चंचला।
बरसते जब मूसलधार हैं,
जलद भी कर भीषण गर्जना।

"सकल देव, प्रजा वन-वासिनी,
सहित गो गण, बालक, बालिका।
किस प्रकार स्वदेह, स्वगेह का,
विपद से करतीं निज त्राण हैं?

"रवि अहो कर धारण उग्रता,
उगलता भुवि पै जब आग है।
वसुमती जब तप्त सुवर्ण-सी,
धधकती द्विज श्रेष्ठ, निदाघ में।

"पशु-पतंग सभी भयभीत हो,
विकल हो जल ही जल याचते।
कुशल से उस आपत काल में,
किस प्रकार कहो रहते वहां?

"निकट-आश्रम कूप, तड़ाग जो,
लघु, सुदीर्घ जलाशय हैं बने।
निकर-शूकर आकर के उन्हें,
मलिन तो सहसा करते नहीं?

"श्रमिक, कोल, किरात अबोध जो,
कुलवती सरला वन-देविया।
कुछ निरक्षरता उनकी घटी ?
कुछ मिली उनको सत्पात्रता ?"

"आप-सा शासक जहा नरेश,
वहा टिक सकता कैसे क्लेश।
दिवस-निशि कहाँ एक ही साथ,
भला रह सकता है नरनाथ ?

"चतुर्दिक, जो भवदीय-प्रताप,
व्याप्त है रक्षा अपने-आप।
वही करता जग की नरदेव,
सुखी हैं सचराचर अतएव।

"कुशल पूर्वक हैं हम सब लोग,
कर रहे हैं स्वराज्य-उपभोग।
दिया जो कष्ट तुम्हें श्रीमान,
हो रहा है संकोच महान।

"चाहता क्षमा नहीं था ज्ञात,
ज्ञान अब हुआ मुझे है तात!
कान्ति-युत मुख यद्यपि कृशगात्र,
दीखता निकट मृत्तिका-पात्र।

"मिल रहा इससे मुझे प्रमान,
किया सर्वस्व आपने दान।
नहीं अब है कुछ भी अवशेष,
न होगा सफल यहां उद्देश।

"अत: अन्यत्र सिद्ध निज-कार्य,
करूँगा जा आज्ञा हो आर्य।
अभीप्सित, दशा आप की देख,
नहीं कर सकता हूँ उल्लेख।"

"महत्वाकाक्षा क्या है देव,
कृपा कर बतलायें स्वयमेव।
सदा गो-द्विज-हित रघु तैयार,
बतायें सेवा योग्य उदार।

"आप जायेंगे यदि अन्यत्र,
अयश होगा मेरा सर्वत्र।
मृत्यु से बढ़कर दुखद महान,
अयशको कहते हैं धीमान।"

"आप का समीचीन अनुरोध,
उचित क्या उसका नहीं विरोध !
अस्तु, तव आज्ञा ने लाचार,
कर दिया मुझे दिलीप-कुमार।

"आगमन गुरु-दक्षिणा-निमित्त,"
"और कुछ कारण भी अतिरिक्त !"
"चतुर्दश कोटि रत्न नर-रत्न, !"
"करूँगा स्नातक प्रवर प्रयत्न।"

सोचने लगे नरेश प्रवीन,
रत्नगर्भा रत्नों से हीन—
हो गयी, बचा हुआ है स्वर्ग,
उसी से ले होगा उत्सर्ग।

अन्ततः कर धनेश-आह्वान—
धनाधिप जो विश्रुत, मतिमान।
दिया नृपने मुनि को संतोष,
उसी क्षण हुआ मधुर जय-घोष।

उदारता-निस्पृहता-संग्राम,—
छिड़ा तत्क्षण अपूर्व अभिराम।
प्राप्य धन देते थे नरराज,
किन्तु कहते थे यह द्विजराज।

"अधिक लेना वराटिका एक,
नहीं कहता है मुझे विवेक।"
"आप-सा पा उदार सत्पात्र,
नहीं रख सकता हूं तिल मात्र।

"किया है तव हित मैंने प्राप्त,
आप ही ले जायें कुल आप्त।"
देख कर उभय पक्ष की टेक,
उल्लसित, चकित हुये प्रत्येक।

शून्य से बोल उठे सप्तर्षि,
"धन्य ब्रह्मर्षि, धन्य राजर्षि।"
किसी विध हुआ समाप्त विवाद,
दिया द्विजने शुभ आशीर्वाद।

"आप-सा धीर, वीर, गुणवान,
और ओजस्वी, तेज-निधान।
पुत्र दें महामहिम जगदीश,
विदा अब दें राजर्षि क्षितीश।"

हुआ द्रुत गति से समय व्यतीत,
फला द्विज आशीर्वाद पुनीत।
और तत्फल-स्वरूप गुणधाम,
हुये आज आविर्भूत ललाम।

अदिति-नंदन से कला-निधान,
हुआ मानों जयंत छविवान।
या कि भव से षटवदन कुमार,
हुये हैं प्रकट जीवनाधार।

सिन्धु से शशि का प्रादुर्भाव,
हुआ रघु का साकार प्रभाव।
आज है प्रकट सुरुचिर निकेत,
हुआ मुद–मंगलमय साकेत।

दिवस पर दिवस साल-पर-साल,
बीतने लगा मोद–युत काल।
राष्ट्र के एक मात्र अवलम्ब,
वर्ष अष्टादश के अविलम्ब।

हो गये अब अज,–राजकुमार,
विनय, नय, श्री–सम्पन्न निहार—
जनक, जननी को हर्ष अपार—
अनिशि होता था बारम्बार।

युवा मृगराज–सदृश उत्साह,
देख थे सोच रहे नरनाह।
हो गये अज विवाह के योग्य,
उसी क्षण लेकर पत्र मनोज्ञ।

आ गया है विदर्भ से भृत्य,
राज्य-श्री देख हुआ कृत-कृत्य।
लिखित था उसमें यह सन्देश,
'मान्यवर श्री काकुत्स्थ नरेश।

'विविध गुण-भूषित और अजेय,
आपको है प्रणाम श्रद्धेय।
स्वयंवर इन्दुमती का देव,
गया है रचा यहा अतएव।

'भेज कर कृपया राजकुमार,
बढ़ायें शोभा नृपति उदार।
चाहिये बस तव कृपा विशेष,
आपका अनुग विदर्भ-नरेश।'

सुन लिया वरवृत्त क्षितीशने,
लिखित जो कुछ था उस पत्र में।
मुदित हो अज राजकुमार को,
सहित सैन्य विदा नृप ने किया।

प्रिय तुरंग कुरंग समान वे,
चल पड़े भरते कल चौकड़ी।
रथ, मतंग, पदातिक को लिये,
अज हुये थित आ तट-नर्मदा।

सहसा सरिता-सलिल लगा होने हिल्लोलित,
त्यों उत्तुंग तरंग हुयीं उच्छलित विकंपित।
लौह-दण्ड-सा भीमकाय कुछ पड़ा दिखाई,
प्रतिघातों से लोल-लोल लहरें टकराईं।

हुआ निकटतर अद्रिश्रृङ्ग-सा दिखलाता था,
हुआ निकटतम गिरि-समान भय उपजाता था।
वारि चीरता हुआ निकल जब बाहर आया,
जाना तब "वनगज" जिसने उत्पात मचाया।

मद-स्राव से मत्त और विह्वल था कंपित,
सैन्य-गजों को मुहुमुंह-करता था शंकित।
नि:स्वासों से मलिन बनाता था दिगन्त को,
तुमुल नादसे वन-प्रान्तर भर दिया अन्त को।

'निशा सपत्नी–संग चन्द्र को करते क्रीड़ा—
देख, उषा–मुख पर छाई है रक्तिम-व्रीड़ा।
ध्वान्त दस्यु–सा तव प्रताप लख भाग रहा है,
व्यसनी नृप–सा शशि निजस्व को त्याग रहा है।

"निशा सुन्दरी परकीया–सी छिपी कहाँ पर!
विजय गर्वयुत प्रभा स्वकीया आई सत्वर।
कलरव-मिस खगकुल करते हैं यशोगान को,
उठो उठो कर दो विचूर्ण अरि–स्वाभिमान को।

"सगर-सुतो ने सत सागरों को लहराया,
और भगीरथ से हमने गंगा को पाया।
पूज्य पूर्वजों की सुकीर्ति यह गंगासागर,
विलसित विस्तृत वसुन्धरा पर है नयनागर।

"सम्मानित हैं जनक आपके नित सुरेश से,
उनका प्रखर प्रताप साम्य करता दिनेश से।
समता में तव निःश्वासों की अक्षम होकर,
तरु–शृंगों से वायु नहीं आता है भूपर।

"निशा सिरानी अब प्रात हो गया,
उठो उठो आर्य, स्ववंश-हंस हे।
चला गया जो क्षण सत्य मानिये,
नहीं हुआ प्रात पुनः कभी कहीं।"

मलीन आभा करते सरोज की,
दृगाब्ज खोले अपने कुमार ने।
नित्य-क्रिया आदिक से निवृत हो,
चले सभा को अवलोकनार्थ वे!

नवां-सर्ग स्वयम्वरा।

सरोज—नेत्रा, सुमुखी, सुभाषिणी,
अनंग-भार्या-इव मोद-दायिनी।
सखी अनेकों सह राज्य-कन्यका,
हुई सभा-मण्डप में उपस्थिता।

स्वरा-पगासी कमनीय कांति थी,
गिरा-समा थी विदुषी मनोरमा।
विष्णु-प्रिया-सी विबुधाङ्गना-सी,
शची-समा थी शुभ-लक्षणा थी।

अमूल्य देशी पट–भूषणादि से,
अलंकृता थी प्रतिमूर्ति प्रेमकी।
परिष्कृता कुञ्चित केश–राजि थी,
सुगुम्फिता केतकि-पुष्प मंजु थी।

भुजंग वेणी–छवि थी अनूपमा,
ललाट था या कल अर्धचन्द्र था।
अपूर्व तेजोमय विन्दु भाल का,
सुचारु भौंहे सुरराज-चाप-सी।

कुरंग या खंजन-से सुनेत्र थे,
मनोज्ञ नाशा शुक–मान-भंजिनी।
ललाम बिम्बा-सम युग्म ओष्ठ थे,
अनार-सी थी दशनावली भली।

अनिन्द्य आकर्षक रम्य हास था,
कपोल–सौन्दर्य प्रफुल्ल कंज–सा।
मिलिन्द था या तिल शोभनीय था,
असीम शोभायुत कर्ण थे बने।

मुखाब्ज–आभा पूर्णेन्दु–तुल्य थी,
इसीलिये सार्थक नाम 'इन्दु' था।
मृणाल–सी बाहु सुगोल–गोल थीं,
सरोज-से लाल कराग्र–भाग थे।

कपोत-ग्रीवा कल कंठ कम्बु–सा,
कुहू–समा थी वचनावली भली।
उरोज थे या शिव, चक्रवाक थे,
कुचाग्र थे या शुचि पुष्प-वृन्त थे।

निकेत–लीला, सुषमा–सुग्रन्थि-सी,
मनोहरा थी चिबुकाति रम्यता।
विशाल ऊँचा हृदयाभिराम था,
भरा हुआ था स्वर्गीय भाव से।

त्रिवेणि–सी थी त्रिवली मनोहरा,
सुनाभि आवर्त–समान मंजु थी।
मनोज-क्रीड़ाद्रि मनो नितम्ब थे,
मराल-सी थी रवमान मेखला।

वितुण्ड-तुण्डाकृत थे उरू भले,
अनंग–सोपान–समान धन्य थे।
अपूर्व आभा युत पद्म–पाद थे,
उषा–स्वरूपा नख–ज्योति थी अहा!

सुवर्ण को भी हत–काति एड़िया,
बना रही थीं कल राग-रंजिता।
मतंग-सी मानस–राजहंस–सी,
गँभीर कल्लोलिनि-सी सुचाल थी।

अपूर्व रोमावलि के समक्ष तो,
मृणाल के कंटक भी मलीन थे।
मृगी–सभीता–इव भूप–वृन्द को,
विलोक लेती सुमुखी कभी २।

नितात क्षीण कटि देख–देख के,
छिपा हुआ था वन–मध्य केहरी।
मृगेन्द्र–मातंग, द्विजेन्द्र–कंज का,
सुसंग देखा कवि ने-स्वनेत्र से।

प्रकृतरूप से दृष्टि जिधर वह झुक जाती थी,
चन्द्र-सम्भवा-विभा उधर ही फैलाती थी।
था जिस पर जा रुक जाती थी सभा-भवन में,
"अहो भाग्य" वह कह उठता था मनही मन में।

ध्यानाकर्षित करने को उस स्वयम्बरा का,
जो थी अनुपम रूप–राशि उस पतिम्वरा का।
विविध रङ्गमय चेष्टायें आगत नृप–द्वारा,—
होती थी। हो गया उपस्थित कौतुक न्यारा।

कोई कुसुम–स्तवक करों से था उछालता,
कोई अपना मुकुट शीश पर था संभालता।
कमल सहित कोई मृणाल को लगा घुमाने,
पा सुगन्धि अलि–वृन्द लगे उसपर मँड़राने।

कोई अमात्य से सानुराग था बातें करता,
बार बार कोई कपोल को कर पर धरता।
कोई अपनी मणि-माला को था सुलझाता,
दातों–तले अधर को कोई रहा दबाता।

ज्योतिर्मय अपना किरीट कोई उतार कर,
देख रहा था आनन की छवि उसमें सुन्दर।
कोई करता था नख से रेखाये अंकित,
पाद-पीठ पर अति विचित्र होती थी भासित।

और अनेकानेक हो रही थीं चेष्टायें,
उन सबको हम व्यर्थ कहां तक तुम्हें गिनायें।
देख २ राजाओ की अद्भुत लीलायें,
बालक थे हंस रहे संकुचित थीं वनितायें।

रघु–प्रतिनिधि–सह सभ्य सेवको से संवेष्ठित,
राजमार्ग त्यो रंगभूमि करते आलोकित।
जब अवधेश–कुमार–आगमन हुआ सभा में,
अद्वितीय थे रूप और गुण में, प्रतिभा में।

लोकोत्तर आनन्द सबों ने तत्क्षण पाया,
किसे न देती सौख्य युवा की कंचन–काया?
उच्च और सुविशाल अपेक्षाकृत अति उत्तम,
रत्न–जड़ित उस सिंहासन पर मृगपतिके सम।

बैठे राजकुमार हुए शोभित वे ऐसे,
ताराओं में चन्द्र सुरों में सुरपति जैसे।
इन्दुमती के प्राप्ति-अर्थ आशा नृपगण की,
हुई निराशा में परिणत लख आभा उनकी।

भूपतियों की वंशावलि से पूर्व परिचिता,
दक्षा थी वक्तृत्व-कला में पूर्ण पंडिता।
वक्षस्थल पर सुधारती-सी दिव्य मालिका,
राज-कन्यका से बोली वह द्वार पालिका।

"पतिम्वरे! ये महाराज हैं मगध-देश के,
सती वसुमती हैं मोहित गुण पर नरेश के।
करते वैदिक यज्ञ सदिच्छा-सहित निरन्तर,
आते हैं स-शरीर स्वयम् वरुणादि पुरन्दर।
प्रिय-प्रवास में अयि प्रिये! वे सुरागनायें सभी,
दिखलाई पड़तीं नहीं प्रफुलित कलिका-सी कभी।

"मंदाकिनि के तीर पाटलीपुत्र सुहावन,
रम्य राजधानी है इनकी जन-मन-भावन।

उसे देखने की है यदि अभिलाष तुम्हारी,
तो पहना सकती हो यह वरमाला प्यारी।
कैसा अनुपम देश है, सुरभि-सना मारुत अहा!
वारि पियूष-समान है, सुना आपने क्या कहा ?"

चतुर सेविका इन्दुमती को देख निरुत्तर,
अन्य महीपति-निकट ले गई उनको सत्वर।
स्वर के पीछे ताल चला आता है जैसे,
नृप-तनयाभी खिंची चली आई है वैसे।
द्वारपालिका विहंस कर, तरल-प्रेम-रस में पगी,
अंग-देश के नृपतिका परिचय यों देने लगी।

"विष्णु-वल्लभा कमला की परिपूर्ण कृपा है,
सरस्वती की भी इन पर त्यों अनुकम्पा है।
ये हैं प्यारे उन्हे और वे इनको प्यारी—
उन दोनो की बनो सपत्नी तुम सुकुमारी।
गज-शास्त्री ये हैं स्वयम्, अंग-देश अवनीश हैं।
सिवा शक्र के और को, नहीं झुकाते शीश हैं।

"देखा मैं ने नहीं आप-सा शासक-रक्षक,
धनी-निर्धनी-भेद-भाव नहिं रखते रंचक।
सुन्दरता के भक्त आप हैं बड़े सदाशय,
रूप-हनता नहीं कभी पाती है प्रश्रय।
तू भी सुन्दर है शुभे! नम्र निवेदन है अतः,
क्या इनको अपनायँगी? कहिये कुछ अबतो स्वतः"।

अभिनन्दन कर उन्हें सुनन्दा से फिर बोली—
राजपुत्रि। "है बनी हुई तू अब तक भोली।
नहीं एक-सी रुचि सबकी होती है आली,
शशि पर मरती कहा चकोरी सदृश मराली।"
गंधवाह जिमि गंध को है करता स्थानान्तरित,
किया सुनन्दा ने तथा इन्दुमती को भी त्वरित।

"ये अवन्ति के नराधीश हैं अरी सयानी,
उन्नतमना, विवेकशील, सहृदय, विज्ञानी।
अमानिशा को आप पूर्णिमा कर देते हैं,
कृत्रिम शशि से देवि, प्रकृत सुख ले लेते हैं।

वश्य कर लिया है प्रिये, अनलानिल को आप ने,
स्वर्णकांति-सी कांति को, जरा देखतो सामने।

"उज्जैनी त्यों सिप्रा की उत्ताल तरंगे,
शुभे, देखने की यदि हैं हिय-बीच उमंगे।
बड़भागिनि, तो इन्हे बना सकती हैं साथी,
ऐसी सुविधा विना स्वयम्वर और कहाँ थी?"
सूर्यकांत-मणि चन्द्रसे, द्रवित कहाँ देखी गई,
नृप-तनयाकी भी दशा उसी तरह लेखी गई।

अनन्तर अन्य महीप समीप,
नाम था जिसका सुभग प्रतीप।
गई ले इन्दुमती को संग,
सुनन्दा बोली फिर सउमंग।

"रूप अनूप अनूप-देश के महाराज हैं,
इनका ही नेतृत्व मानता नृप-समाज है।
अश्रु-हार गुण-रहित सुगुणि ने है पहनाया,
शत्रु-रमणियों को जब जब संग्राम मचाया।

कार्त्तवीर्य के वंशधर, हाँ, प्रतीप शुभ नाम है,
सबसे प्यारा आपको, वैदिक धर्म ललाम है।

"रम्य तटी रेवा का यदि वांछित प्रिय दर्शन,
माहिष्मती पुनीत चाहती हैं अवलोकन।
तो बन सकतीं देवि, आपकी हैं अर्द्धाङ्गिनि,
ये भी होंगे सुखी आप-सी पा चिर संगिनि।"
"उचित कहा तुमने सही, पर देखो मधुराशये,
कुमुद्वती दिननाथ से, विकसित कब होती अये!"

सुमुखरा मथुराधिप के पास,
राज–कन्या–सह बिना प्रयास।
पहुँच कर बोली सहउल्लास,
ललित पद कोमल रहित - समास।

"यौवन–श्री–सम्पन्न नवल वय देख कुमारी,
सुर–कन्यायें भी विमुग्ध हैं रूप निहारी।
क्षमा, दया, समता, सुशीलता, सत्यवादिता,
न्याय–प्रियता, परोपकारिता, सदाचारिता।

ये अनेक गुण एक में, और कहां पर पायगी ?
प्रेम–पात्र अपना इन्हें, सरले ! नहीं बनायगी।

"शूरसेन–अधिराज आप की कीर्ति निराली,
मातृ-पितृ-कुल धन्य हुआ इनको पा आली।
ललनाओं का अंगराग जब धुल जाता है,
जल–विहार में दृश्य अनोखा दिखलाता है।
जह्नुसुता-सी रवि-सुता, भासित तब होती प्रिये,
कौन तरसता है नहीं, उसे देखने के लिये ?

"वन–विहार वर्षा–बहार, बाले, निहार कर,
शरद–चन्द्र, सुषमा अमन्द, वारिज–मिलिन्द पर।
सच कहती हूँ वरानने, तुम मोहित होगी;
नहीं भूलकर भी विदर्भ की सुध फिर लोगी।
वृन्दावन-सा वन कहां ? कुञ्जगली-सी वीथिका ?
सरिता यमुना-सी कहा ? कुन्दकली-सी यूथिका !

अनावृत–मेघ हिमांशु–प्रकाश,
कमल–प्रति होता यथा हताश।

सुनन्दा का त्यों वाग्-विलास,
इन्दु-हृद-कंज न सका विकास।

सेविका सुदती ने तत्काल,
दिखाया और एक भूपाल।
लगी देने परिचय सानन्द,
हुए निर्गत अक्षर-स्वच्छन्द।

"रम्भोरुह हैं नृप कलिंग के आप विराजित,
ढंग राज-संचालन का है बड़ा व्यवस्थित।
हेमांगद शुभ नाम धाम गुण हैं पिकवयनी,
धनुर्धरों में आप एक ही हैं मृगनयनी।
गिरि महेंद्र प्रहरी सदृश, रक्षक है इनका बना,
रत्नाकर रत्नादि दे, सम्मानित करता घना।

"सिन्धु-ऊर्मि से मलयानिल क्रीड़ा को बाले,
द्वीपान्तर के विविध रंग के मनुज निराले—
अगर देखने की इच्छुक हैं सौख्य-दायिनी,
तो भूपति की हो सकती हैं अंक-शायिनी।

सांध्य गगनकी लालिमा, लखकर सागर–सतह पर,
नौकारोहण आदि से निज जीवन को सफल कर।

निशा सुहाती कब चक्रवाक को ?
तथा सुकन्या मनको कलिंग का।
नरेश भी तो न लुभा सका सखे !
गई कुमारी ढिग पाण्ड्य–भूप के।

"सुभगे ! ये हैं कौन कहा के विज्ञ महाशय,"
"दक्षिण भुवि–भर्तार आपका सुनिये परिचय।
ललित कलाओं के सुन्दरि, हैं श्रेष्ठ पुजारी,
पाण्ड्य–देश के धरणी–पति विश्रुत भयहारी।
चतुर व्यूह–रचनादि में, सुमति कलाविद शिष्ट हैं,
इनको करना वरण क्या कुशले ! तुम्हें न इष्ट है ?

"चर्चितांग हरि चन्दन से वपु अधिक मनोरम,
स्वर्ण शलाके, रण–कौशल अद्भुत् बल–विक्रम।
श्याम श्याम घन-सदृश भूप तुम हो शम्पा-सी,
अनुपमेय जोड़ी होगी जलनिधि–सरिता-सी।

तरु–तमाल एला-लता, श्रीफल–पूरित सघन वन,
देखेंगी होगा सुलभ, नित मलयज शीतल पवन।"

विलोल नेत्रा वह द्वार पालिका,
सुना चुकी भूप गुणानुवाद को।
परन्तु कांता कमनीय केशिनी,
हुई न बालेन्दु-मुखी प्रभाविता।

दिखा चुकी है जिन भूप-वृन्द को,
सुना चुकी है जिनकी सुकीर्ति को।
नरेन्द्र सारे अब क्षीण कांति हैं,
प्रभात की दीप-शिखा समान वे।

गई लिवा के रघुराज-सूनु के,
समीप नंदा उस दिव्य-मूर्ति को।
विलोक आभा शतकोटि चंद्र-सी,
हुई चकोरी-इव राज कन्यका।

फंसी हुई-सी सफरी—समान थी,
कुमार के मोहक रूप-जाल में।

मुहुर्मुहुः कम्प शरीर मे हुआ,
प्रत्यंग होता पुलकायमान था।

विशेष आसक्ति निहार इन्दु की,
अतीव योग्या हृदभाव–ज्ञातिनी।
सहास्य बोली कल कंठ-कोकिला,
हुई सुवीणा–ध्वनि भी तिरस्कृता।

"शिवि,-दधीचि त्यों हरिश्चन्द्र जिसमे नृप-दानी,
हुए अनेकों सगर, भगीरथ-से भट मानी।
उसी वंश मे धीर, वीर, धीमान गुणाकर,
स्वर्विजयक्षम थे ककुत्स्थ-सम्राट श्रेष्ठतर।
जिनके प्रबल प्रताप से, असुर-वृन्द ऐसे हिले,
शिर न उठाया आजतक,हृदय न फिर उनके खिले।

"देवासुर-संग्राम मचा था जब वर वरणी,
अयुत वर्ष पर्यन्त पीड़िता थी यह धरणी।
देवराज को निज वाहन था शुभे बनाया,
बर्बर कुर्बर–व्यूह उन्होने मार भगाया।

तरु—तमाल एला-लता, श्रीफल—पूरित सघन वन,
देखेंगी होगा सुलभ, नित मलयज शीतल पवन।"

विलोल-नेत्रा वह द्वार पालिका,
सुना चुकी भूप-गुणानुवाद को।
परन्तु कांता कमनीय केशिनी,
हुई न बालेन्दु-मुखी प्रभाविता।

दिखा चुकी है जिन भूप-वृन्द को,
सुना चुकी है जिनकी सुकीर्ति को।
नरेन्द्र सारे अब क्षीण कांति हैं,
प्रभात की दीप-शिखा समान वे।

गई लिवा के रघुराज-सूनु के,
समीप नंदा उस दिव्य-मूर्ति को।
विलोक आभा शतकोटि चंद्र-सी,
हुई चकोरी-इव राज कन्यका।

फंसी हुई-सी सफरी—समान थी,
कुमार के मोहक रूप-जाल में।

मुहुर्मुहुः कम्प शरीर में हुआ,
प्रत्यंग होता पुलकायमान था।

विशेष आसक्ति निहार इन्दु की,
अतीव योग्या हृदभाव—ज्ञातिनी।
सहास्य बोली कल कंठ-कोकिला,
हुई सुवीणा—ध्वनि भी तिरस्कृता।

"शिवि,-दधीचि त्यों हरिश्चन्द्र जिसमे नृप-दानी,
हुए अनेकों सगर, भगीरथ-से भट मानी।
उसी वंश में धीर, वीर, धीमान गुणाकर,
स्वर्विजयत्तम थे ककुत्स्थ-सम्राट श्रेष्ठतर।
जिनके प्रबल प्रताप से, असुर-वृन्द ऐसे हिले,
शिर न उठाया आजतक,हृदय न फिर उनके खिले।

"देवासुर-संग्राम मचा था जब वर वरणी,
अयुत वर्ष पर्यन्त पीड़िता थी यह धरणी।
देवराज को निज वाहन था शुभे बनाया,
बर्बर कुर्बर—व्यूह उन्होने मार भगाया।

उनके शासन-काल में, भाग्य सभी के थे जगे,
प्रियम्बदे, काकुत्स्थ ये, तब से कहलाने लगे।

"इसी दिव्य कुल में दिलीप नृप थे शत्रुञ्जय,
सुर-सुन्दरिया गाती हैं जिनका यश-अक्षय।
सविध सुनयने, किया ऊनशत यज्ञ मनोहर,
पर शत-क्रतु–फल शतक्रतु से ले लिया वृहत्तर।
द्वार-द्वार पर उन दिनो ताले लगते थे नहीं,
किसकी थी सामर्थ्य जो, वस्तु किसी की ले कहीं।

"शासित है इन दिनों दिलीपात्मज रघु द्वारा,
आसमुद्र अयि स्वयम्वरे, महि-मण्डल सारा।
माननीय ने शुभे, विश्वजित-यज्ञ किया है,
कल्याणी, सर्वस्व अन्त में दान दिया है।
जिनके विस्तृत राज्य में, अर्क अस्त होता नहीं,
और नीचता कूप के सिवा न दिखती है कहीं।

"उन्हीं राज ऋषि महाराज रघु के सुकुमारी,
एकमात्र हैं आप राज्य-उत्तराधिकारी।

कान्ते ! कांति–किलोल कर रही है आनन पर,
अंग २ पर है अनंग तन्वङ्गि निछावर।
इनको यदि तुम चाहती, प्रणय-सूत्र से बाधना,
निःसंसय होगी सफल, तेरी शिव–आराधना।

"शस्य श्यामला भूमि जहाँ की नेत्र–रंजिनी,
सरयू सरि रमणीय जान्हवी–मान–भंजिनी।
पिक-कुल-कूजित आम्र-विपिन की शोभा न्यारी,
मानो है एकत्र वहीं पर सुषमा सारी।
पुण्य भूमि साकेत की, स्वर्गपुरी समता करे ?
ऐसी क्षमता है कहा ? उसमें अयि विमलाम्बरे !

"मणि–कांचन–संयोग बना है अब कुछ बोलो,
मैं ने जो कुछ कहा हृदय-कांटे पर तोलो।
यौवन का आगमन हो रहा यद्यपि तनमें,
मुख-मुद्रा गंभीर, भाव उन्नत हैं मनमें।
इनको यदि तू चाहती, प्रणय–सूत्र से बांधना,
निःसंसय होगी सफल, शिवाराधना–साधना"

हुई अग्रसर सुना सुनंदा अपना भाषण,
किन्तु खड़ी रह गई वहीं नृप-सुता सुलक्षण।
सखी एक ने पतिम्बरा का कर-पल्लव धर,
श्रीकुमार को पहनाया वरमाला सुन्दर।

हुआ सहस्रीरुह–आत्म–विकास,
मिला नलिनी को चन्द्र–प्रकाश।
हुआ नन्दा का सफल प्रयास,
पौर जन को असीम उल्लास।
